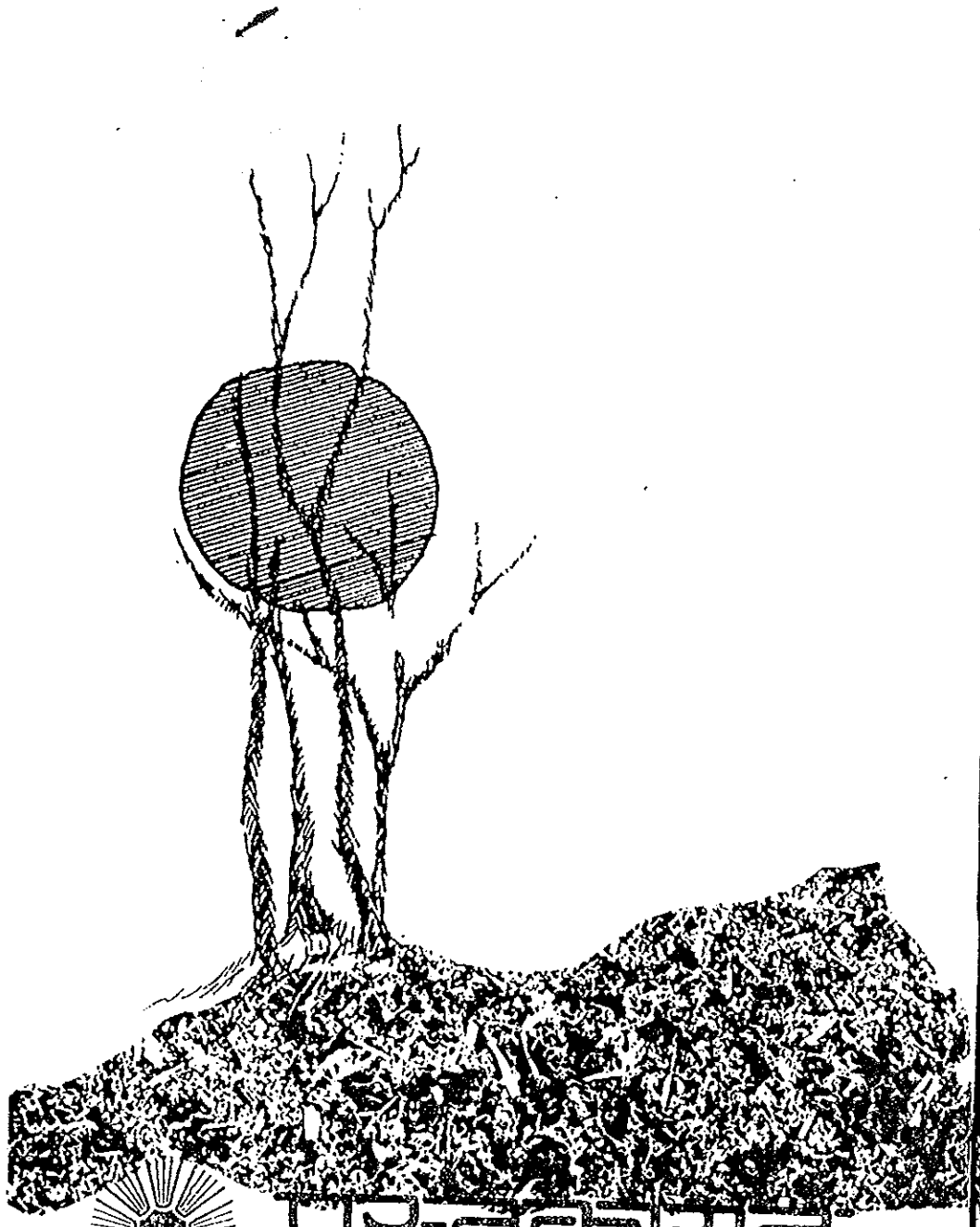

डाकू

पुस्तकायन

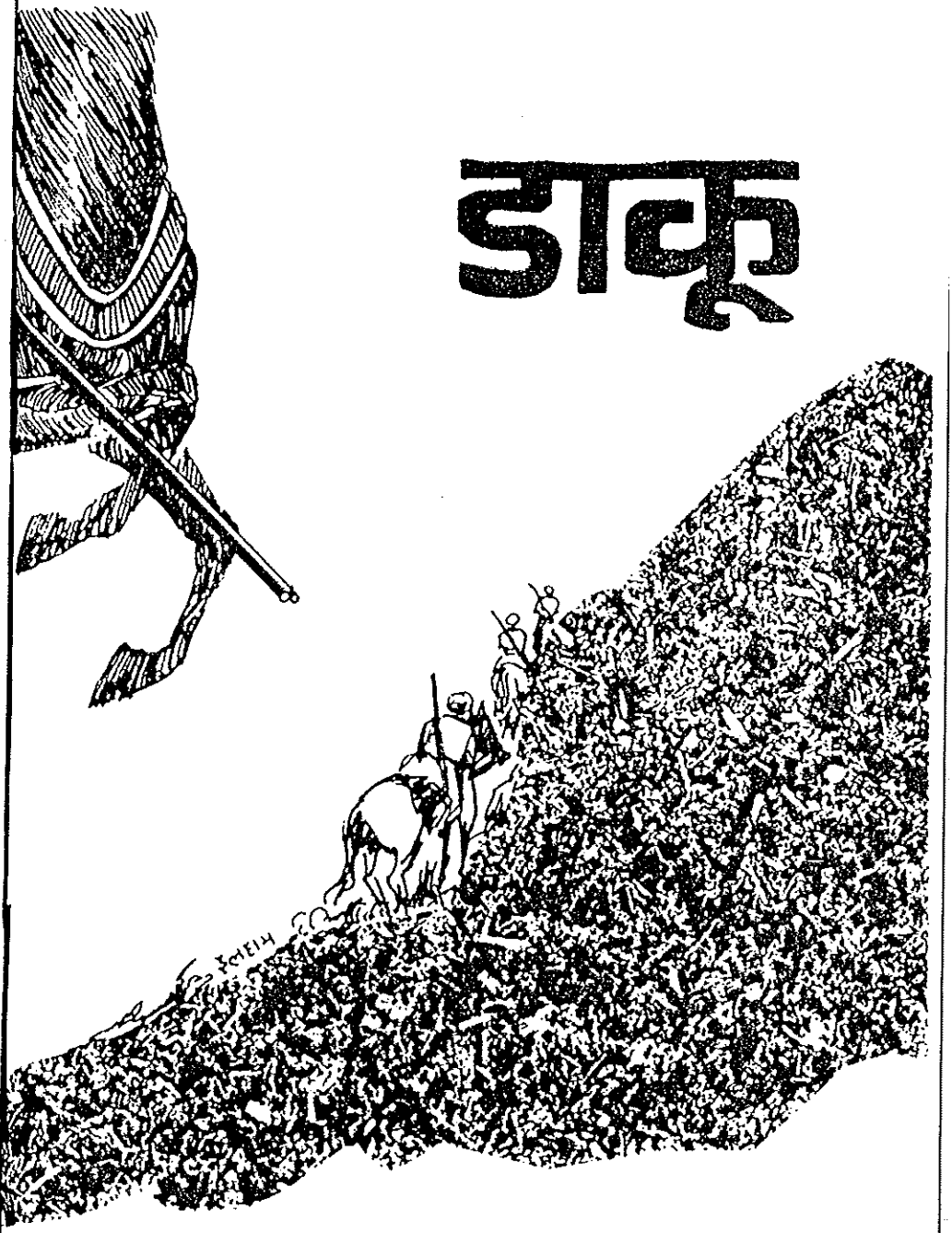

मुद्राराक्षस

मूल्य : २०·००

प्रकाशक : पुस्तकायन (सुबोध पॉकेट बुक्स का उपक्रम) २/४२४०-ए, अंसारी रोड, नयी दिल्ली-११०००२ / © लेखक / संस्करण : १९८६
मुद्रक : अजय प्रिण्टर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२
DAAKU : Play by Mudra Rakshas

रंग-पूर्वा

हिन्दी में कुछ बरस नाटक लिखने के बाद मैं इस आलेख के प्रकाशन के साथ नाट्य-लेखन समाप्त कर रहा हूँ। इस तरह मेरे चंद नाटकों में यह आखिरी नाटक है।

इसके कुछ कारण हैं। पहली बात तो यह कि रंगलेखन को लेकर मेरी जो धारणाएँ रही हैं उनपर पिछले दिनों श्री नेमिचन्द्र जैन से नाहक विवाद हो गया। बड़े भाई के तौर पर ही नहीं बहुत तरह से मैं उनकी इज्जत करता रहा हूँ। मैं अभी भी विश्वास नहीं कर पा रहा हूँ कि उनके तर्क किस अर्थ में सही थे। पर जो हुआ वह पीड़ादायक है। क्योंकि उनसे विवाद को लेकर कुछ ऐसे रंगकर्मी बीच में कूदे और वह भी उनकी तरफ से कि सारी बहस गन्दे दिमागों का वमन-भर बनकर रह गई। नहीं जानता कि कला-जगत् में अनपढ़ों का उत्तर किस स्तर पर और किस भाषा में दिया जाय। दूसरी बड़ी वजह, आगे नाटक न लिखने की, शायद यही है कि रंग-जगत् में बहुतायत ऐसे अनपढ़ों की हो गई है जो 'बत्ती 'जलाओ-बत्ती बुझाओ' मात्र सीखकर कुछ भी बोलने का हक पा गए हैं।

तीसरी बात यह कि रंग-जगत् के बहुसंख्यक कर्मियों ने लेखक का असम्मान अपनी प्रतिष्ठा का साधन मान लिया है।

चौथा बड़ा कारण यह है कि रंग-जगत् ज्यादा-से-ज्यादा तकनीक-निर्भर और कम-से-कम रचनात्मक चर्चा रह गया है। ऐसी दुनिया में रहना लेखक के तौर पर अपने आपको पीड़ा देना है।

पिछले दिनों यानी पिछले कोई बीस बरसों में अत्यन्त गतिशील रंग-जगत् में जो कुछ हुआ है उनका अध्ययन बहुत बारीकी से करने की जरूरत है।

श्री इब्राहीम अल्काजी के बाद कुछ अरसे तक हिन्दुस्तान का रंगमंच यथार्थवाद और विकृतिधर्म (ऐब्सर्ड) के बीच की लम्बी यात्रा करता रहा। कई जगह ग्रोताव्स्की से प्रभावित महत्त्वपूर्ण काम हुआ। उसके बाद

सहसा रंगचर्या ने एक मोड़ लिया। शायद इसके पीछे हयवदन और घासीराम कोतवाल और बाद में आला अफ़सर जैसे नाटकों का दबाव रहा हो कि रंग-जगत् ने सहसा लोकधर्मिता से अपने आपको बड़े पैमाने पर जोड़ लिया।

इस नये लोकधर्मी भारतीय रंगमंच ने समूचे कला-जगत् में एक क्रांतिकारी आन्दोलन का रूप ले लिया और देश के कई भागों में हबीब तन्वीर, रतन थियम और के० एन० पनिक्कर जैसे रचनाकारों ने न सिर्फ परम्परा से अर्थवान घटक प्राप्त किए बल्कि परम्परा के इतिहास में नया, कल्पनाशील, रचनात्मक अध्याय जोड़ा भी।

लेकिन इसी के साथ अल्काज़ी से सिर्फ बत्ती जलाओ-बत्ती बुझाओ मात्र सीखे कुछ रंगकर्मियों ने लोकनाट्य का सस्ता और अप्रामाणिक प्रयोग करके लोकनाट्य और आधुनिक रंगचर्या, दोनों को ही भारी चोट पहुँचाई। छाओ से लेकर नौटंकी, स्वांग, ख्याल और यक्षगान तक के नाम पर कोई भी संगीत या पद-संचालन किसी भी जगह लगा दिया गया और अक्सर ये लोकधर्मी प्रयोग ऐसे क्षेत्रों में जाकर किए गए जहाँ इन मूल रूपों का कोई परिचित न हो। इस तरह लोकधर्मी नाट्यों के नाम पर भारी पमाने पर कला के क्षेत्र में धोखाधड़ी चल पड़ी।

यह धोखाधड़ी चूंकि बहुत बड़े पैमाने पर की गई, इसलिए सहसा समूचे रंगपरिदृश्य से संवेदनशील, आधुनिक भावबोध से युक्त जटिल सामाजिक सम्बन्धों वाले लेखन की पहचान एकदम समाप्त हो गई। हिन्दी में ख़ासतौर से राकेश जैसे लेखन की गुंजाइश भी नहीं रही, यूजीन ओ नील, आयोनेस्को या बेकेट जैसे लेखन की तो बात ही दूर है। सवाल यह नहीं है कि हिन्दी में सार्त्र होना ज़रूरी है। आवश्यक यह है कि वर्तमान भारतीय सामाजिक इतिहास का संवेदनशील मंचीय भाष्य होना चाहिए। पर उसकी गुंजाइश पिछले दिनों मंच चमत्कार के नये रिवाज ने खत्म कर दी।

अगर यह घटना बहुत अच्छी है तो बेहतर है। जो भी हो, रंगलेखन से पूर्ण मुक्ति पर मुझे सुख ज्यादा मिलेगा।

—मुद्राराक्षस
13.3.1986

भूमिका

नाटक क्या है? क्या संवादों में लिखी रचनामात्र नाटक हो सकती है? क्या कहानी, उपन्यास, गाथाकाव्य और रंगमंचीय नाटक में केवल शिल्पगत अन्तर होता है?

पश्चिमी शास्त्रीय सिद्धान्त के अनुसार नाटक साहित्य की वह विधा है जिसे दर्शकों के लिए उन अभिनेताओं द्वारा परिभाषित किया जाता है जो कथा का अभिनय करते हुए संवादों और मुद्राओं द्वारा चरित्रों का अभिनटन करते हैं।

बर्नार्ड शॉ ने अपने चिरपरिचित विनोद के स्वर में लिखा है कि नाटक लेखक के दृष्टिकोण से किसी घटना का प्रारम्भ और समापन है जिसमें दर्शक को यह विश्वास हो जाता है कि मंच पर वास्तविक चरित्रों के साथ वास्तविक घटनाएँ हो रही हैं।

जहाँ तक पहली परिभाषा का सवाल है वह नाटक के बाहरी स्वरूप का विवरण भर देती है और नाटक की जगह अगर कविता या कहानी का मंचन हो रहा हो तो उसमें और नाटक के आलेख के मंचन में फर्क नहीं बता सकती। यही नहीं, अगर हम शरीरमनोयान्त्रिक रंगक्रिया के वाख्तैगाफ और ग्रोताव्स्की के काम को देखें तो यह परिभाषा बहुत असफल सिद्ध होती है।

शॉ की परिभाषा शास्त्रीय और यथार्थवादी मंच के लिए सही होने के बावजूद लोकनाट्यों और ब्रेख्त के रंगशिल्प के लिए अप्रासंगिक हो जाती है। ब्रेख्त तो यह चाहता ही नहीं कि दर्शकों को मंच पर यथार्थ का भ्रम हो। बल्कि वह कहता है कि उसका उद्देश्य यह है कि मंच पर आए चरित्र को दर्शक नाटक का चरित्र मात्र माने ताकि उसके प्रति वह अपना सैद्धान्तिक फैसला दे सकने की स्थिति में रहे।

ऐसी हालत में शाँ की व्याख्या निरर्थक ही हो जाती है।

यहाँ उस भारतीय नाट्य-सिद्धान्त की थोड़ी-सी चर्चा जरूरी है जिसे पाण्डित्य ने आधुनिक संदर्भों से काटकर एक जड़ मतवाद या रूढ़िमात्र बना दिया है।

संस्कृत में रंगमंचीय आलेख के लिए रूपक शब्द का प्रयोग होता है। नाटक रूपकों के ही विविध प्रकारों में से एक है। यह मात्र इसलिए नहीं है कि धनंजय को स्कूल मास्टर की तरह विविध प्रकार के आलेखों का वर्गीकरण करके उन्हें संज्ञा देने का शौक था।

यह विविधतापूर्ण शब्द इस बात का प्रमाण है कि नाटक पश्चिमी शास्त्रीय परिभाषाओं के सतही और अधूरे भाष्यों से कहीं अधिक गहरे रचनात्मक प्रयत्न के रूप में भारत में पहचाना और माना जा चुका था।

पहली बात तो यह कि संस्कृत शास्त्रीय नाटक कविता होता था या कविता का ही दृश्यान्तरण। नाटक या रूपक को 'कविता मान लेने पर' हम रचनाबोध और परिभाषा के बृहत्तर संसार में पहुँच जाते हैं। इस संसार का विवेक बहुत व्यापक है, पश्चिम में भी और भारत में भी। भारत में शास्त्रीय नाटक, साहित्य और कविता को लेकर जो सबसे सशक्त सिद्धान्त विकसित हुआ वह रस सिद्धान्त है। रस सिद्धान्त इत्तफ़ाक से परवर्ती, कम समझ लोगों ने नवरसों तक ही सीमित कर दिया जैसे कोई संगीत को सप्तक के सात स्वरों मात्र तक सीमित कर दे।

सप्तक के सात स्वरों से बाहर संगीत होना असम्भव होने के बावजूद ये सात स्वर-मात्र संगीत रचना नहीं हो सकते। जैसे एक स्वर से दूसरे स्वर के बीच सन्तरण के असंख्य स्तरों के सावधानी से किये गये प्रयोग संगीत बनते हैं, उसी तरह नवरस मात्र अपने आप में बहुत मोटे गैर काव्यात्मक वर्गीकरण है जिनमें कविता के वे सूक्ष्म तन्तु बाँधे नहीं जा सकते जो करुण होने के बावजूद 'उत्तररामचरित' के राम की करुणा से 'मेघदूत' के यक्ष की करुणा को अलग करते हैं या शिव के शृंगार को पुरुरवा के शृंगार से अलग करते हैं।

दरअस्ल सारी गड़बड़ इसीलिए हो गई कि पण्डिताऊ व्याख्याओं में नवरस तो दिखाई दे गए, रसों की अपनी व्यक्ति-समय-समाज-सापेक्ष्य

बारीकियाँ या उसकी विविध अवस्थाएँ और मात्राएँ मूल्यांकन से छूट गईं। दरअस्ल कविता के मूल्य रस में नहीं बल्कि 'रस की विशिष्टताओं' में निहित रहे हैं और इन्हीं का अध्ययन नहीं किया गया।

यह आश्चर्यजनक नहीं होना चाहिए और न ही मात्र संयोग कि रस-सिद्धान्त और काव्यशास्त्र के अधिकांश और बड़े प्राचीन व्याख्याकार नाट्यशास्त्र के ही भाष्यकार रहे हैं और उनके ग्रन्थ भी नाट्यविवेचना-परक ही थे।

अभी थोड़ी देर हम इस विवाद को एक तरफ़ रख दें कि रस सिद्धान्त जैसी चीज, जिसे हम आधुनिक साहित्य में निरर्थक मान चुके हैं, नाटक के सन्दर्भ में कहाँ तक विचारणीय हो सकती है।

रससिद्धान्त के प्रतिपादकों के अनुसार रचना की सिद्धि का अर्थ होता है रस का परिपाक होना। यहाँ रस उतने रूढ़ अर्थ में भी हम लेकर चलें तो विशेष अन्तर नहीं पड़ेगा। हम इस तरह की बहस जरूर विचारणीय समझेंगे, जिन्हें परवर्ती सिद्धान्तकारों ने उठाया; जैसे रस अनुमानित होता है या वास्तविक होता है या जैसे कुछ दूसरे अध्येताओं ने सवाल उठाए कि रस किसमें स्थित होता है यानी शैय्या की भूमिका करने वाली कलाकार का अभिनय देखकर द्रवित हुए दर्शकों में, कलाकार में या इतिहास और पुराण की शैय्या में।

यह ध्यान देने की बात है कि विश्व में अकेले भारत के संस्कृत विद्वान् ही ऐसे रहे हैं जिन्होंने रंगक्रिया की व्याख्या में दर्शक को आधार बनाया।

एक धारणा यह है कि अभिनीत मात्र यानी शैय्या की मूल व्यथा ही नाटक का रस है। दूसरी यह है कि शैय्या की भूमिका करने वाली अभिनेत्री का 'नाट्य' ही रससिद्धि है और तीसरा और मेरी दृष्टि से सर्वाधिक समीचीन, प्रासंगिक और महत्त्वपूर्ण विचार यह है कि साधारणीकरण की प्रक्रिया द्वारा दर्शक में ही रस का परिपाक होता है। अभिनेत्री तो पुत्र-शोक का दृश्य करने के बाद आटोग्राफ देने या चाय पीने में व्यस्त हो सकती है। वह करुणा का नाट्य मात्र करती है जबकि रो पड़ने वाला दर्शक नाट्य नहीं करता। मूल चरित्र शैय्या की तकलीफ से अपनी किसी तकलीफ को छेड़ा गया पाकर स्वयं पीड़ित होता है। आल्हा सुनने के बाद

अपने शत्रु की हत्या का उसका सोया संकल्प जाग जाता है।

साधारणीकरण की प्रक्रिया का अनुसंधान और दर्शकों को रंगप्रक्रिया के प्रतिफलन का पात्र बनाकर भारतीय शास्त्रीय नाट्य चिन्तकों ने रंग-चिन्तन को असाधारण महत्त्व का आधार दे दिया था जो पश्चिम के चिन्तकों में आज भी नहीं मिलता।

ऐसा लगेगा कि नाटक क्या है, यह समझने की प्रक्रिया में रससिद्धान्त और नाट्यशास्त्र सम्बन्धी ब्यौरे अप्रासंगिक हैं। लेकिन मैं प्रयत्न करूँगा कि इस सम्बन्ध में इनकी प्रासंगिकता आगे स्पष्ट हो सके।

नाटक को समझने के इस प्रयत्न से पहले मैं नट और सूत्रधार के सम्बन्ध में प्रारम्भिक शास्त्रीय धारणाएँ भी स्पष्ट करने की इजाजत चाहूँगा।

भरत ने बहुत कम परिचित लेकिन बहुत महत्त्वपूर्ण बात अभिनय के बारे में कही है :

राजवत भरतः तस्मात् राजापि नटवत् भवेत्।

यानी जब भरत राजा जैसा हो जाता है, जब अभिनेता मनोहरसिंह तुगलक हो जाता है, तब तुगलक स्वयं मनोहरसिंह हो जाता है, राजा भी नट बन जाता है। राजा हरिश्चन्द्र अतीत से अभिनय के लिए नहीं आता। गिरिराज प्रसाद को राजा जैसा बन जाना पड़ता तब अतीत का वह चरित्र नटवत् प्रकट होता है।

नटवत् भी ध्यान देने योग्य शब्द है। सर जॉन गिलगुड भी हैमलेट का चरित्र कर सकता है और मायर होल्ड भी। हैमलेट की अभिव्यक्ति दोनों ही करेंगे लेकिन दोनों के हैमलेट अलग होंगे। इसीलिए विविध अभिनेता हैमलेट के अस्तित्व तक जाते हैं। एक ही हैमलेट विविध अभिनेताओं में दुबारा 'नटवत्' प्रकट होता है। यह बारीक बात जहाँ भरत ने स्पष्ट लिखी, स्टेनिस्लाव्स्की की पकड़ से छूट गई।

अभिनय शब्द की व्याकरणसम्मत व्याख्या स्वयं नाट्यशास्त्र में है, जिसमें अभिप्रत्यय के साथ ले जाना अर्थ दिया गया है लेकिन भरत ने यह भी स्पष्ट किया है कि क्या ले जाना। वे यह स्पष्ट करते हैं कि यहाँ उनका अर्थ नाट्य-प्रयोग को ले जाने से है यानी रंगरचना का ले जाया जाना—दर्शक तक या मूल चरित्र तक—यह होता है अभिनय। एक्टिंग या

एनेकअमेंट का अर्थ बहुत सीमित है।

प्रसंगवश सांख्यदर्शन के लेखक ने जाने-अनजाने एक बड़ी महत्त्वपूर्ण बात उदाहरण देते वक्त कह दी। उसका कहना है कि प्रकृति से पुरुष उस समय अलग हो जाता है जब वह प्रबुद्ध हो जाता है और उदाहरण के लिए बताया है जैसे नर्तकी दर्शकों के लिए प्रस्तुति देकर निवृत्त हो जाती है या उस प्रस्तुति से मुक्त हो जाती है उसी तरह प्रकृति पुरुष से असंपृक्त हो जाती है।

अभिनेय कला की इतनी दार्शनिक उपमा आकस्मिक नहीं है। यह तत्कालीन चिन्तन का ही विस्तार है। गिरिराज हरिश्चन्द्र के चरित्र में समाहित नहीं रहते। वे उक्त चरित्र देकर निवृत्त हो जाते हैं या तो दर्शक को हरिश्चन्द्र के पास ले जाकर छोड़ देते हैं या दूसरी धारणाओं के अनुसार हरिश्चन्द्र को दर्शक के पास लाकर चले जाते हैं। शंकुक, जो रस की उत्पत्ति सामाजिक या दर्शक में मानते हैं, संयोग से सांख्यदर्शन के ही पोषक थे। और यह भी ध्यान देने की बात है कि भट्टलोल्लट, भट्टनायक अभिनव गुप्त आदि भी तत्कालीन भारतीय दर्शन शास्त्रों के गहन अध्येता थे।

प्रश्न यह है कि किसी अनुपस्थित चरित्र को दर्शक के पास या दर्शक को हरिश्चन्द्र-जैसे अनुपस्थित चरित्र के पास ले जाने की यह प्रक्रिया सम्पन्न कैसे होती है ?

वेदान्त के अनुसार ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान की त्रिकुटी के भंग होने पर ब्रह्मानन्द प्राप्त होता है। रस को भी विद्वानों ने ब्रह्मानन्द सहोदर कहा है। ज्ञाता अभिनेता माना जा सकता है, ज्ञेय नाटक का चरित्र और ज्ञान की स्थिति में दर्शक होता है। इनके त्रित्व को टूटना होता है। जहाँ इनका विभाजन समाप्त होता है वहाँ रस-निष्पत्ति होती है क्योंकि दर्शक दृश्य तक पहुँचाया जा चुका होता है या दर्शक, दृश्य और अभिनेता एक समग्र स्वायत्त घटना बन चुके होते हैं।

इस बीच अभिनेता एक महत्त्वपूर्ण कड़ी होता है। दर्शक को अपनी सामान्य और नाटक से भिन्न मनःस्थिति से निकालकर हरिश्चन्द्र में तन्मय कर सकना एक यौगिक क्रिया मानी जा सकती है। वह साक्षात्कार का एक

माध्यम होता है जो उस स्थिति में पहुँचा होता है जिस स्थिति में हम किसी ऐसे सिद्ध को मान सकते हैं जिस पर कोई दिव्यात्मा या मृतात्मा अवतरित हुई हो। 'आत्मा' के अवतरण की यह प्रक्रिया नाटककार से शुरू होती है जो अपने बोझ को निर्देशक में स्थानान्तरित कर देता है। निर्देशक पर पुनरवतरित 'आत्मा' का सन्तरण अभिनेता तक होता है और वहाँ से वह दर्शक तक पहुँचती है। यह मजे की बात है कि नाटककार, निर्देशक और अभिनेता बारी-बारी से इस 'बोझ' या 'तनाव' से मुक्त होते जाते हैं लेकिन दर्शक उसका स्थायी वाहक बनता है। नाटकीय तनाव जहाँ रंग-कर्मी की मुक्ति होता है वहाँ वह दर्शक के साथ जुड़ जाने वाली स्थायी घटना होता है।

कविता या साहित्य की दूसरी विधाओं और नाटक में यहीं से अन्तर की पहचान शुरू होती है। कविता सामाजिक पर निश्चय ही यह 'बोझ' डालती है लेकिन स्वयं नहीं। उसके लिए सामाजिक या पाठक को स्वयं ऐसा माध्यम अपने आप में ही तलाश करना पड़ता है और उसे तैयार करना पड़ता है जो उसको कवि द्वारा चाहा तनाव दे सके। इसके लिए उसे सबसे पहले स्वयं ही कवि के निकट जाना होता है।

नाटक में यह नहीं होता। यहाँ कालिदास के मेघदूत की यक्षिणी के विरह और भास के नाटक में वासवदत्ता की तकलीफ के दो उदाहरण लेने होंगे। जहाँ मेघदूत की भाषा के माध्यम से पाठक या श्रोता यक्षिणी की अपनी स्वतन्त्र तस्वीर बना सकता है और बनाता भी है वहाँ वासवदत्ता की वही तस्वीर उसे स्वीकार करनी होती है जो मंचित हो रही हो। इसे थोड़ा और विस्तार से देखना होगा। कालिदास ने यक्षिणी का वर्णन किया है। कालिदास के ब्यौरे के सभी खण्ड मिलाने के बाद भी यक्षिणी का कल्पनाचित्र हर व्यक्ति में अलग होगा क्योंकि वह उसके अपने अनुभव में आए यथार्थ के खण्डों से निर्मित होगा। लेकिन उत्तरा बावकर द्वारा अभिनीत वासवदत्ता की पहचान में यह फर्क नहीं होगा। उस एक प्रस्तुति में वह चरित्र सबको एक जैसा लगेगा।

इस तरह नाटक वस्तुसत्य के मूर्त रूप को दर्शक की कल्पना पर नहीं छोड़ता।

लेकिन एक बहुत बड़ा दूसरा तथ्य भी नाटक को विशेष विधा बनाता है। जहाँ कविता, चित्रकला या साहित्य की दूसरी विधाएँ केवल पाठक को अनेक प्रकार का अनुभव दे सकती हैं लेकिन स्रष्टा की ओर से उनका अपना एक नियत और निश्चित अर्थ ही देती हैं वहाँ नाटक ऐसी रचना होता है जो दर्शक तक पहुँचने से पहले निर्देशक और अभिनेता—इन दो सीढ़ियों पर अपना अर्थ तय करता है और उसका अन्तरंग और बाह्यांग सब कुछ बदल सकता है।

मेघदूतम् जहाँ एक ही समग्र रूप से तैयार रचना के रूप में सीधे पाठक तक पहुँचता है, अभिज्ञान शाकुन्तलम् के साथ यह नहीं होगा। हर निर्देशक उसे एक अलग रचनात्मक अनुभव बना सकता है और शकुन्तला का अभिनय करने वाली अलग-अलग अभिनेत्री चरित्र की तकलीफों के एक दूसरे से अलग अनुभव प्रस्तुत कर सकती है।

यहाँ हमने प्रारम्भ में नाटक सम्बन्धी जो व्याख्या उद्धृत की थी उस तक पहुँचने की जल्दबाजी सही नहीं होगी। यहाँ इतना जरूर सच है कि इस तरह नाटक साहित्य की वह विधा बनता दिखाई देता है जिसका मंचीय युक्तियों और सहायिकाओं से भाष्य किया जाय। लेकिन यह आंशिक परिभाषा है।

दरअस्ल नाटक वह विधा है जिसमें देश, काल, व्यक्ति से साक्षात् के लिए दर्शक को अभिनेता, मंच-क्रिया और निर्देशक का तीसरा माध्यम उपलब्ध होता है जबकि कविता-कहानी-उपन्यास में उसे यह माध्यम अपने अन्दर ही आविष्कृत करना होता है।

इसे थोड़ा और विस्तार से समझने के लिए हम उदाहरणार्थ मुक्तिबोध की सघनतम कविता 'अन्धेरे में' ले सकते हैं। इस कविता के अनुभव हर पाठक में अलग हो सकते हैं लेकिन उनमें से हर पाठक को अपने बोध तक यात्रा स्वयं ही तय करनी होती है। यूजीन आयोनेसो के नाटक 'दि चेयर्स' में दर्शक को बोध तक की यात्रा में स्पष्ट नक्शे, दिशा संकेतक यहाँ तक कि संवेदनात्मक भाष्यों के प्रारूप टोनी रिचार्डसन जैसे निर्देशक, अभिनेताओं और रंग-साधनों द्वारा मिलते जाते हैं।

इस तरह हमें नाटक की पहचान का काम एक नये कोण से शुरू

करना होगा। इस नये कोण से हम उस कठिनाई से बच सकेंगे जो नाटक को कविता-उपन्यास जैसे अन्य आलेखों के समानान्तर रखकर देखने पर पैदा होती है या फिर तब पैदा होती है जब कोई स्वायत्तता प्रेमी रंगकर्मी नाटक को साहित्य की ओर धकेलकर रंगप्रक्रिया को उससे बाहर सीमित करके देखने की जिद करने लगता है।

लेखक और निर्देशक के बीच झगड़ा खासा लम्बा है और अक्सर यह सामने आया है।

हालाँकि मैं मानता हूँ यह ध्यान दी जाने वाली बात नहीं होनी चाहिए थी। रंगतैयारी के दौरान ऐसे झगड़े आम बात है। अभिनेता-अभिनेता, अभिनेत्री-अभिनेत्री, अभिनेता-अभिनेत्री, रंगदीपनकर्ता, रंगप्रबन्धक, मुखसज्जाकार, निर्देशक—इनमें से किसी के भी बीच झगड़े होते ही रहते हैं। लेखक चूंकि स्वतन्त्र रूप से भी एक विशिष्ट ख्याति वाला प्राणी होता है इसलिए उससे झगड़ा विशेष चर्चा का विषय बन जाता है।

मैं एक रोचक उदाहरण दूंगा—बंसी कौल ने आला अफरसर का निर्देशन किया। आलेख को लेकर न कभी उससे कभी कोई बहस हुई न मतभेद। मैं उसमें अभिनय भी कर रहा था। मेरा बंसी से झगड़ा अभिनय को लेकर हुआ। बात आई-गई हो गई। दो बरस बाद एक लेख में मैंने कहीं पढ़ा कि मेरे और बंसी के बीच लेखक-निर्देशक का झगड़ा हो गया। यह सिर्फ इसलिए लिखा गया कि यह मान लिया गया था कि मैं नाटककार हूँ तो झगड़ा नाटक को लेकर ही हुआ होगा।

लखनऊ में उर्मिल थपलियाल मेरा नाटक गुफाएँ कर रहे थे। उनसे जोरदार झड़प हो गई। काफी दिन बाद कुछ और लोगों ने कहा वह लेखक-निर्देशक का झगड़ा था जबकि सच यह है कि गुफाएँ की तो मैंने रिहर्सल भी नहीं देखी थी क्योंकि उन्हीं दिनों मैं खुद परितोषगार्गी का नाटक कर रहा था। झगड़े का कारण आलेख नहीं शराब थी लेकिन चूंकि मैंने नाटक लिखने की गलती की थी इसलिए अनुमान यही लगाया गया कि झगड़ा नाटक पर हुआ होगा।

गलती कई जगह है। सबसे पहली गलती लेखक की होती है कि वह

नाटक को भी कविता की तरह दर्शक को सीधे सम्बोधित मानता है। यह गलत बात है। नाटक निर्देशक तक पहुंच जाने के लिए होता है, भले ही वह निर्देशक दुनिया में एकाध ही हो। उसके बाद उसे निर्देशक की कृति, स्वायत्त रचना बनकर रंगमंचीय प्रक्रिया के माध्यम से दर्शक तक पहुँचना होता है। लेखक को नाट्य-रचना करके वह निवृत्ति महसूस नहीं करनी चाहिए जो कविता या उपन्यास लिखने के बाद महसूस करता है। कविता के कथ्य तक पाठक को सीधे पहुँचने की सुविधा होती है। जिस नाटक के कथ्य तक पाठक सीधे, बिना तीसरे माध्यम की मदद के पहुँच जाय वह कविता हो सकती है, कहानी होगी, उपन्यास होगा, नाटक नहीं।

नाट्य-लेखन और उपन्यास-लेखन की शर्तों में अन्तर कहाँ होता है और क्या होता है? फिर नाट्य-लेखक और नाट्य-निर्देशक की रचनात्मक जरूरतों में कितना और क्या फर्क होता है?

नाटक क्या है, इसकी पहचान के लिए हमें इन दो बड़े सवालों पर नये कोण से सोचना होगा।

नाट्य-रचना एक तरह की आधिभौतिक प्रक्रिया है जिसमें हम विषय की अवतारणा या उसकी बोध-प्राप्ति का प्रयत्न करते हैं। प्रत्येक रचना नाटककार को बोधिसत्व का एक छोटा रूप बनाती है जो नाटककार को पहले से भिन्न बनाकर फिर पहले जैसा ही छोड़ जाती है। रचना से पहले नाटककार और रचना के बाद के नाटककार में दरअस्ल वही समानता होनी चाहिए जो अभिनय से पहले और अभिनय के बाद के अभिनेता में होती है।

अभिनेता जो कुछ मंचक्रिया से पहले होता है वही वह बाद में भी होता है, सिर्फ़ बीच में वह कुछ दूसरा होता है इडिपस के चरित्र की अवतारणा में ध्यानस्थ, तनावग्रस्त।

नाटक के लेखक की भी सही स्थिति यही होती है। इसका यह अर्थ नहीं कि वह अपनी कृति से मोहग्रस्त न हो। मोह सहज है। पर वह मोह द्वित्व का होना चाहिए।

नाटक का आलेख दर्शक या पाठक के लिए भी नहीं होता और अभिनेता-रंगकर्मी के लिए भी नहीं होता। यह बात शायद बहस की

गुंजाइश छोड़ती है तब ऐसी स्थिति में इसे मेरा व्यक्तिगत विचार मानकर काम चलाया जा सकता है। नाटक दर्शक, पाठक या अभिनेता के लिए नहीं केवल एक पाठक के लिए, एक विशिष्ट व्यक्ति के लिए लिखा जाता है जिसे हम निर्देशक कहते हैं।

रंग-रचना के अभिकल्प में या बोध-क्षणों में नाटककार जिस स्नायविक-मानसिक तनाव और गुंफन से गुजरता है—हरिश्चन्द्र की कथा नहीं उनकी नियति के सूक्ष्मतर तन्तुओं के बीच से गुजरते हुए उसे जो अनुभव होता है, उसे निर्देशक तक हस्तान्तरित करने का एक माध्यम होता है आलेख।

यानी नाटक नाटक नहीं होता। वह खुद एक अमूर्त, भाषा में छट-पटाता अनगढ़ और अपूर्ण माध्यम होता है निर्देशक को यह बता सकने का कि नाटककार किन जटिल और अपरिभाषेय तनावों से गुजरा है। इस तरह नाटक नाम की रचना भी माध्यम है, कृति नहीं।

निर्देशक आलेख की सिर्फ़ मदद लेता है—सिर्फ़। और जितना अच्छा नाटककार होता है वह उतनी ही बारीकी और पूर्णता से यह मदद करता है। निर्देशक आलेख के भीतर से गुजरता हुआ उन तनावों को अपने ढंग से ग्रहण करता और झेलता है जो लेखक ने उससे पहले ग्रहण किए और झेले होंगे।

यहाँ लेखक-निर्देशक का द्वित्व टूटने का अवसर आता है यानी लेखक निर्देशक में समाहित-स्थानान्तरित हो जाता है।

नाट्यशास्त्र पहला ऐसा ग्रन्थ है जिसमें निर्देशन की कला को स्वायत्त कला के रूप में व्याख्यायित किया गया है। योरुप में तो निर्देशक कोई सौ बरस पुराना है पर भारत में दो-ढाई हज़ार बरस पहले भी रंगकर्म का सर्वोच्च कलाकार निर्देशक ही होता था।

नाट्यशास्त्र में उसे सूत्रधार कहा गया है। अजीब बात है कि रंगकर्म से अपरिचित विद्वानों ने सूत्रधार को कठपुतली, धागे से रंगशाला नापने वाला आदि न जाने क्या-क्या बना दिया। ज़रा इस परिभाषा पर ध्यान दीजिए।

गानस्य च वाद्यस्य च पाठ्यस्याप्येकभावविहितस्य।
शास्त्रोपदेशयोगात्सूत्रज्ञः सूत्रधारस्तु॥

—ना० शा० ३५-३०

अब सूत्रधार के गुण बताता हूँ—यह कहकर भरत ने २४वें अध्याय में अन्तिम लगभग आठ श्लोकों में उसकी परिभाषा की है।

इतने के बाद सूत्रधार कठपुतलीवाला मात्र नहीं रह जाता। भरत ने सूत्रधार के कुछ विशिष्ट गुण देखे जिन्हें पहचानना जरूरी है।

जहाँ सूत्रधार को 'शास्त्ररीतिप्रतिष्ठित' नाट्यकुशल और शास्त्रों की अवधारणाओं को प्रयोग में लाने की क्षमता वाला होना चाहिए वहीं उसे अभिनेता को नाट्यप्रयोग की पहचान करा देने की योग्यता वाला भी होना चाहिए। बाकी और बहुत से महत्त्वपूर्ण गुण यहाँ उद्धृत करने की ज़रूरत नहीं है।

नाट्यकृति का बहुत से शास्त्रों के ज्ञान से साक्षात् से क्या रिश्ता हो सकता है?

लिखी नाट्यकृति अगर लेखक के मानसिक और आत्मिक तनाव का निर्देशक तक हस्तान्तरण है तो उसके पुनर्भोग के लिए निर्देशक को 'नाना-शास्त्रवित्' होना ही होगा। यानी भले ही नाटककार स्वयं नानाशास्त्र-वित् न हो, मात्र घोड़ावृत्ति (हार्ससेन्स) से किन्हीं अनुभवों को मानसिक रूप से आमन्त्रित कर गया हो, उन्हीं अनुभवों को दुबारा जीने के लिए निर्देशक को नानाशास्त्रवित् होना पड़ेगा।

इसे उदाहरण से समझना होगा। ब्रेख्त का नाटक लीजिए 'काकेशियन चाक सर्किल'। इसमें जनक्रान्ति के समय राजपरिवार के एक शिशु को बचाकर उसकी धाय भाग निकलती है। नाटक की इस घटना को ब्रेख्त ने जैसे भी आमन्त्रित किया हो, इसके सही और पूर्णांग आमन्त्रण के लिए निर्देशक को इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति, मनोविज्ञान और इतिहास-दर्शन को समझना होगा, उससे सन्नद्ध होना होगा, तभी वह इस नाटक का खुलासा कर सकेगा, उसका पुनर्भोग कर सकेगा जो नाटककार ने भोगा था। इस प्रक्रिया में निर्देशक ऐसा बहुत-कुछ भी खोजकर ला सकता है, जो नाटककार ने देखा हो पर लिखा न हो। ब्रेख्त खुद जब अपने नाटकीय

अनुभव में निर्देशक के रूप में उतरते थे तो दुबारा बहुत-कुछ खोज लाते थे जिसे भाषण से लेकर छायाचित्रों तक के रूप में देना पड़ जाता था।

इसलिए 'नानाशास्त्रवित्' होना या बहुत-सी विधाओं के ज्ञान से परिचित होना लेखक से ज्यादा निर्देशक के लिए ज़रूरी रहा है। भरत तो ऐसा मानते ही हैं, आगे भी मानना ज़रूरी है।

अभी बहुत-सी विधाओं के ज्ञान से सन्नद्ध निर्देशक की परिकल्पना यह है कि वह मंचविधान, चित्रकला, मुखसज्जा, रंगदीपन, अभिनय, संगीत आदि की अनेक कलाओं से परिचित हो। भरत ने इनका परिचय होना अलग से गिनाया है। यह सब जानना तो जरूरी था ही, 'दर्शनशास्त्र के जटिल संसार का अधिकारी विद्वान होना' भी सूत्रधार के लिए ज़रूरी माना गया था।

पिरान्देलो एक खास चिन्तन पद्धति के नाटककार हैं। उनका नाटक लें—राइट यू आर या इफ़ यू थिंक यू आर।

इसमें एक क्लर्क की पारिवारिक जिन्दगी से उलझन में पड़े पड़ोसियों का चित्रण है। क्लर्क और उसकी पत्नी एकान्त जीवन बिताते हैं। बस सिर्फ वे कभी-कभी गली के छोर पर जाते हैं जहाँ ऊपर की मंजिल में रहने वाली बुढ़िया ऊपर से टोकरी लटका देती है। क्लर्क दम्पति टोकरी में कुछ रखते हैं जिसे बुढ़िया ऊपर खींच लेती है। बुढ़िया से भी कोई मिलने-जुलने नहीं आता।

पड़ोसी उत्सुक होकर क्लर्क की पत्नी से जिज्ञासा करते हैं। पत्नी उन्हें अपना बयान दे देती है। असन्तुष्ट पड़ोसी अब पति का बयान लेते हैं। पति और पत्नी के बयान में अन्तर्विरोध है। तब वे दोनों का एकसाथ बयान लेते हैं। दोनों वही बातें दुहराते हैं लेकिन तीसरी कथा निकल पड़ती है। हारकर वे बुढ़िया से पूछते हैं। अब कथा का रूप चौथा हो जाता है। जब क्लर्क दम्पति और बुढ़िया से एकसाथ वह सब पूछा जाता है तो पाँचवीं कथा उभरती है। बयान कोई नहीं बदलता फिर भी कथ्य बदलता है। यही नाटक का नाटकीय तनाव है, जिससे लेखक ने साक्षात् किया।

बिना उस दार्शनिक विचार को जाने जिससे पिरान्देलो जुड़ा था, अगर कोई इस नाटक की प्रस्तुति करे तो यह भोंड़ा हास्य-भर बन जायगा।

जबकि नाटक प्रहसन नहीं है।

पिरान्देलो सत्रहवीं सदी के डेकार्ट की उस दार्शनिक परम्परा के हैं जिसमें वस्तुसत्य और बोध (भारतीय शास्त्रीय शब्दावली में) नील और नीलबुद्धि के बीच द्वित्व होने-न-होने का चिन्तन किया गया है। कोई वस्तु कहाँ तक बुद्धि में स्थित अमूर्त प्रतिमा है और कहाँ तक बाहरी जगत् में स्थित वस्तुसत्य—इस सवाल के हाल की लम्बी दार्शनिक परम्परा है।

जार्ज बर्कले और काण्ट यहाँ तक पहुँच गए कि बाहरी जगत् में वस्तु सत्य होते ही नहीं। सब-कुछ मानसिक प्रतिमा है और दर्शन को काफी हद तक शंकराचार्य तक खींच ले गए।

पिरान्देलो दरअस्ल बर्कले से प्रभावित थे और वस्तुसत्य के अनस्तित्व के बारे में आश्वस्त थे। इसीलिए उन्होंने इस नाटक की रचना के माध्यम से भी यही दिखाने की कोशिश की कि तथाकथित दृश्य वस्तुसत्य कुछ नहीं होता। वह मनःस्थितियों-परिस्थितियों की सापेक्षता में बदल तो जाता ही है, उसकी मानसिक प्रतिमाएँ भी हर व्यक्ति में अलग होती हैं।

इसका एक मोटा सा उदाहरण लिया जा सकता है। एक गेंद को आधा सफेद और आधा काला रंग दें। जो उसे काली तरफ़ से देखेगा उसे पूरी गेंद काली नजर आएगी और जो सफेद की तरफ़ से देखेगा वह पूरी गेंद सफेद ही बताएगा। विज्ञानवादियों ने एक मस्खरा उदाहरण दिया—क्या 'चौकोर वृत्त' का अस्तित्व हो सकता है? दिमाग में 'चौकोर वृत्त' का अस्तित्व सम्भव है, वस्तुजगत् में नहीं।

जो निर्देशक ब्रेख्त के नाटक 'काकेशियन चाक सर्किल' के नाटकीय तनाव से गुजरने के लिए मार्क्स के इतिहास-दर्शन को पढ़ने के बाद सफलता की अपेक्षा कर सकता है उसे पिरान्देलो के उक्त नाटक के कथ्य को जीने के लिए समूचा 'सब्जेक्टिव आइडियलिस्ट' दर्शन पढ़ना होगा।

उसी को सार्त्र का 'मेन विदाउट शैडोज़' करने के लिए सार्त्र और कीर्केगार्द का अस्तित्ववादी दर्शन समझना होगा और गेटे के 'ऊरफाउस्ट' की अन्तर्यात्रा के लिए हर्डर के इतिहास-दर्शन और कामू के 'क्रासपर्पज़' को जानने के लिए हेडेगर के अवयवी इतिहास-दार्शनिक अस्तित्ववाद से परिचित होना पड़ेगा। यूजीन ओ' नील के नाटकों का संवेदनात्मक

तन्तुजाल ओढ़ने और उस मानसिक चक्रव्यूह को भेदने के लिए विलियम जेम्स के उपयोगितावाद और जे० बी० वाटसन जैसे मनोवैज्ञानिक के व्यवहारवाद से ही सहायता मिलेगी।

टी० एस० इलियट के नाटक 'मर्डर इन कैथीड्रल' और एन्यूइल के नाटक 'बेकेट' का कथानक एक ही है। लेकिन दोनों में अन्तर सिर्फ़ 'ट्रीटमेण्ट' का नहीं, दृष्टि का है। वे दोनों विभिन्न दार्शनिक विवेकों की उपज हैं।

इस तरह जहाँ पिरान्देलो के लिए ज़रूरी नहीं था कि वह हेडेगर या मार्क्स भी पढ़ता, जहाँ ब्रेख्त के लिए ज़रूरी नहीं था कि मार्क्स के अलावा बर्कले भी पढ़ता, वहीं निर्देशक के लिए यह ज़रूरी भी है और अनिवार्य भी। हिन्दी क्षेत्र में केवल एक निर्देशक ने इसकी तैयारी की—वह थे इब्राहीम अल्काजी। दुर्भाग्य से वे मंच छोड़ गए। दूसरी भाषाओं में ऐसा कोई निर्देशक है, ऐसा मैं नहीं जानता।

'नीतिशास्त्रवित्' होने की भरत की यह शर्त ही निर्देशक को इस योग्य बनाती है कि वह किसी भी लेखक के अन्तर्जगत् में सहजता से पहुँच जाय।

नाटककार के द्वारा आविष्कृत नाटकीय तनाव को झेलने-जीने के बाद निर्देशक उसे रंगकर्मियों तक पहुँचाता है।

यह बेहद जटिल प्रक्रिया है। लेखन इस दृष्टि से उतनी जटिल प्रक्रिया नहीं है। जिस संवेदनात्मक तनाव को लेखक से लेकर निर्देशक पुनर्भुक्त करता है, उसे बाद में कई खण्डों में विभाजित करता है और वे तनाव खण्ड अभिनेता, रंगदीपक, दृश्यबन्धकार आदि में वितरित करता है। खण्डों में विभाजित इस तनाव को बाद में प्रस्तुति के समय फिर जुड़कर मूल रूप लेना होता है। यह साधारण कुशलता का काम नहीं है कि वे खण्ड इतनी सूक्ष्मता से तैयार किए गए हों कि सम्पूर्णता लेकर प्रभावी कृति बन सकें।

निर्देशक का काम है रंगकर्मियों में उस मौलिक तनाव को पैदा कर देना जिसके बाद वे बाण की तरह छूटकर अपनी नियत यात्रा कर सकें।

रंगकर्मी का काम इनसे भिन्न होता है। वह दर्शक में न तो निर्देशक से मिला वह तनाव बाँटता है और न ही वह तनाव जो लेखक ने झेला

था। वे दोनों ही तनाव सिर्फ़ उसकी अपनी तैयारी के लिए होते हैं। लेखक और निर्देशक, दोनों से उपलब्ध तनावों को सिर्फ़ अपने निजी इस्तेमाल में लाता है।

दरअस्ल रंगकर्मी ही वास्तविक, सम्पूर्ण नाटकीय संरचना 'देता' है। यह काम वह दर्शक की मदद से करता है। अकेला नहीं करता। कर नहीं सकता।

वास्तविक रंगरचना की तुलना रति से की जा सकती है। रंगकर्मी और दर्शक की रसज्ञता (रसज्ञता का मतलब पढ़े-लिखे होना नहीं) के संयोग से नाट्यकृति किसी शुक्राणुयुक्त डिम्ब के रूप में परिणत होती है।

इस घटना का यह बाहरी रूप है। इसका अन्तरंग और अधिक जटिल है।

भरत ने कहा था कि जब अभिनेता राजा होता है तब राजा नट जैसा बन जाता है। यानी हैमलेट की भूमिका करने वाले अभिनेता विशेष जैसा हैमलेट दिखता है।

वेदान्त में एक उदाहरण आया है। आकाश का रूप क्या है? घटाकाश, मठाकाश या महदाकाश? घड़े में आकाश घड़े की आकृति का होता है और मन्दिर में मन्दिर की आकृति का। अभिनीत हैमलेट की वही स्थिति होती है। वह ओमपुरी में ओमपुरी जैसा होता है और मायरहोल्ड में मायरहोल्ड जैसा। ऋेप या परिधान से अभिनेता चरित्र जैसा नहीं बनता बल्कि अपने में चरित्र को अवतरित कराने की सुविधा भर प्राप्त करता है लेकिन स्थिति उसकी घटाकाश, मठाकाश की ही होती है।

दर्शक आकाश से साक्षात् चाहता है। उसे महदाकाश नहीं दीखता। दीख भी नहीं सकता। हैमलेट इतिहास से निकलकर नहीं आएगा। दर्शक को इसीलिए मठाकाश या घटाकाश देखना होता है। ओमपुरी या मायरहोल्ड को देखना होता है।

यह मठाकाश न लेखक दिखाता है न निर्देशक। मठाकाश से यह साक्षात् 'रंगकर्मी-दर्शक का युग्म' कराता है। लेकिन यह 'रतिक्रिया' निर्देशक की एक अनिवार्य और बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका का ही परिणाम होती है।

साइकोथिरैपी, मानसिक रोगों के उपचार का एक खास तरीका है। चिकित्सक रोगी को दवा नहीं बल्कि विचार देता है, बोध। रोगी की मनो-ग्रन्थि खोलने के लिए वह विचारों की ही मदद लेता है। ध्यान से देखें तो मनोचिकित्सा एक खासा संयमित नाटक होता है। जिस तरह वाद्ययन्त्रों की ट्यूनिंग करके सही स्वर दिया जाता है वैसे ही रोगी को एक खास मनःस्थिति में लाना होता है। वहाँ से आगे का काम रोगी स्वयं करता है यानी मनो-ग्रन्थि स्वयं खुलती है।

मनोग्रंथि स्वयं खुले इस मनःस्थिति में रोगी को लाना होता है।

निर्देशक का भी ठीक यही काम होता है। वह अभिनेता को ऐसी मानसिक स्थिति दे देता है कि अभिनेता स्वचालित रचनाधर्मिता में पहुँच जाय और दर्शक को ही उद्घाटित करना शुरू कर दे। दर्शक के उद्घाटन से यहाँ मेरा मतलब है दर्शक को अपनी मनोरचना में सहायता देना।

साधारणीकरण को भी रस-सिद्धान्त की ही तरह पण्डिताऊ सुलूक ने भोथरा कर दिया। दरअस्ल इस जैसे सिद्धान्त के अप्रासंगिक लगने या होने का सवाल ही पैदा नहीं होना चाहिए था लेकिन वह हुआ। दर्शक जो मंच पर देखता है और जिससे उसका अंतरंग प्रभावित होता है वह न तो 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का पौराणिक चरित्र शकुन्तला होता है न ही मंच पर अभिनय करने वाली अभिनेत्री। उस समय दर्शक पुराण की शकुन्तला से अपने जीवन की अनुभूतियाँ जोड़ लेता है और इस तरह उस अज्ञात चरित्र को जीता है।

यह मोटी शास्त्रीय परिभाषा है लेकिन यह हमें सिर्फ 'नवरस' तक ही पहुँचा सकती है 'आयोनेस्सो' के 'लेसन' या 'चेयर्स' तक नहीं। इसके लिए साधारणीकरण की परिभाषा का पुनर्मूल्यांकन करना होगा।

दरअस्ल साधारणीकरण की प्रक्रिया कहीं असाधारणीकरण भी हो जाती है। यानी मंचित चरित्र में दर्शक सिर्फ वही नहीं देखता जो दिखाया गया हो। दर्शक वह देखना भी शुरू कर देता है जो नहीं दिखाया गया है। और दर्शित चरित्र या घटना में न दिखाया गया देखने की प्रक्रिया प्रत्येक दर्शक में अलग होती है।

साधारणीकरण सभी दर्शकों में एक समान प्रतिक्रिया की अपेक्षा करता

है जबकि यह नहीं होता। प्रतिक्रिया में मात्रा और गुण, दोनों का अन्तर हो सकता है। 'सत्य हरिश्चन्द्र' देखते हुए जहाँ एक व्यक्ति रो पड़ सकता है वहाँ दूसरा सिर्फ अन्दर से दुखी हो सकता और तीसरा बिल्कुल खामोश बैठा रह सकता है।

सच तो यह है कि साधारणीकरण की प्रक्रिया इतनी साधारण होती ही नहीं। साधारणीकरण दर्शक की कल्पनाशीलता, संवेगात्मक रचनाशीलता और वैचारिकता की शुरुआत करने वाला एक विस्फोट मात्र होता है जिससे यह शृंखला प्रक्रिया शुरू होती है।

प्रत्येक दर्शक का अपना अलग मनो-संसार होता है जो उसके परिवेश और इतिहास की देन होता है। इसीलिए इतिहास या कहीं और से उठाया कोई भी चरित्र जब वह नाटक में देखता है तो सबसे पहले उसे साधारणीकृत कर लेता है यानी चरित्र की जगह अपने को खड़ा कर लेता है। बहुत से चरित्र हों तो "वह सभी चरित्रों में अपने को भेज देता है।"

साधारणीकरण या रस पर सोचते हुए इस अन्तिम बात को हमेशा नजरन्दाज किया गया।

'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' देखते वक्त दुष्यन्त का ही साधारणीकरण तो नहीं होता। उसके हर पात्र की हर स्थिति में दर्शक प्रविष्ट होता है। जिस वक्त दर्शक 'मृच्छकटिकम्' देखता है वह शकार, शर्विलक और जुआड़ियों के साथ चारुदत्त और वसन्तसेना तक से एक साथ अपने अनुभवों का साधारणीकरण करता है।

जरा ऐसी स्थिति की कल्पना कीजिए जहाँ एक ही व्यक्ति अनेक विविधताओं वाले चरित्रों को, अक्सर परस्पर विरोधी चरित्रों को, एक साथ जीने की कोशिश करता हो वहाँ उस व्यक्ति की क्या स्थिति होती होगी ? 'मैक्बेथ' में या 'जूलियस सीजर' में हत्यारे चरित्र भी हैं और नेक चरित्र भी। दर्शक दोनों तरह के जीवन एकसाथ जीता है। वह ब्रूटस होकर वार भी करता है और सीज़र होकर आहत भी होता है।

साधारणीकरण के इस पक्ष की ही व्यापक पड़ताल की जानी चाहिए थी।

दुनिया के लगभग हर नाटक में परस्पर विरोधी चरित्र होते हैं। दर्शक

उनमें से भले ही किसी को नापसन्द और अस्वीकृत करे उससे साधारणीकरण तो होगा ही। यह एक अलग और विचित्र स्थिति है। दर्शक शाप देने वाले दुर्वासा को अस्वीकृत करता है और मैक्बेथ को नापसंद करता है फिर भी उनसे अपना साधारणीकरण करता है। इसे हम वह स्थिति कह सकते हैं जिसमें कोई व्यक्ति न चाहते हुए भी बदबू में रहता है। न चाहते हुए भी एक हत्यारे के साथ सफर करता है।

ऐसी स्थिति व्यक्ति की चेतना पर असाधारण दबाव डालेगी। यह दबाव और भयानक हो जायगा जब व्यक्ति स्वयं ब्रूटस भी हो और सीज़र भी और ऐण्टोनी भी और मैक्डफ भी, यहाँ तक कि सीज़र का भूत भी और ब्रूटस का भय भी।

साधारणीकरण इस तरह दर्शक को सबसे ज्यादा जटिल स्थिति में डाल देता है। इस स्थिति में कुछ हद तक लेखक और निर्देशक फँसते हैं। यही उनके तनाव का उत्स भी होता है लेकिन दर्शक लेखक या निर्देशक की तुलना में कहीं असाधारण मनोदशा से गुजरता है।

इसीलिए साधारणीकरण केवल एक शुरुआत है जिसके बाद दर्शक की मनोचेतना में आन्दोलन शुरू होता है।

जब हम साधारणीकरण के इस पक्ष को समझ लेते हैं तो यह भी स्पष्ट हो जाता है कि साधारणीकरण की प्रक्रिया 'नाइट आफ इगुआना' या 'लांग डेज जर्नी इण्टु नाइट' के लिए भी प्रासंगिक होती है।

मैंने ऊपर कहा कि साधारणीकरण नाटक देखने की प्रक्रिया में व्यस्त दर्शक के अन्दर होने वाला वह प्रारंभिक विस्फोट है जिसके बाद दर्शक की कल्पनाशीलता, संवेगात्मक रचना धर्मिता और विचारशीलता के आन्दोलन शुरू हो जाते हैं। इस तरह दर्शक अपने आपमें परिवर्तित होना तो शुरू ही होता है—सामने के दृश्य के नये भाष्य खोजना शुरू कर देता है। कभी-कभी वह ऐसे भाष्य भी खोजता है जिनका मूल नाटक के संस्कार या चरित्र से कोई सम्बन्ध न हो।

'लांग डेज जर्नी इण्टु नाइट' में टाइरन शौनसी नाम के एक आदमी का जिक्र करता है—वो पुराना हरामी है। बदमाश, वो जरूर ही मुझे मुसीबत में फँसा देगा—इत्यादि।

दर्शक, जाहिर है टाइरन और शौनसी दोनों से साधारणीकृत होगा। लेकिन इसके बाद एक तरफ जहाँ वह उक्त पात्रों का तनाव ओढ़ लेगा वहीं जिन तत्त्वों के कारण वह साधारणीकरण में सफल हुआ उनसे भी तत्काल भिड़ जायगा। यानी अगर शौनसी के रूप में उसने किसी पाजी पड़ोसी को देखा है तो वह सन्दर्भ भी उसी क्षण जीवित हो उठेगा। मुमकिन है कि वह उक्त पड़ोसी को पराजित करने की एक स्कीम ही उसी क्रम में सोच डाले और नाटक कुछ देर के लिए छोड़ दे।

नाटक और अपने व्यक्तिगत जीवन—दोनों का एकसाथ भोक्ता होने के बावजूद दर्शक इन दो में से बारी-बारी से एक-एक को छोड़ता-पकड़ता रहता है। इसीलिए उसका सम्पर्क नाटक के साथ ज्यादा-से-ज्यादा जीवन्त बना रहता है। सर्वेश्वर का नाटक 'बकरी' लें।

'बकरी' देखते वक्त दर्शक सिर्फ़ नाटक के चरित्रों से ही तादात्म्य नहीं करता। वह अपनी जिन्दगी, अपना वर्तमान भी हाथों में लेकर बैठ जाता है। नाटक की गति के साथ वह कहीं तो चरित्रों में जीता है, कहीं अपने जीवन की त्रासदी को जीता है। नाटक से उसका एकात्म्य उतना ही तीखा होता है जितनी तेज़ नाटक और निजी जीवन को बारी-बारी से छूने की उसकी यह प्रक्रिया होती है।

नाटक देखते वक्त दर्शक साधारणीकरण की इसी प्रक्रिया के बाद अपनी जिन्दगी के ज्यादा निकट खिसक जाता है। जो नाटक उसे उसके अपने जीवन से जितना ज्यादा सटा देता है वह नाटक उतना ही अच्छा होता है।

बकरी का सत्यव्रत राशन के दफ्तर में कहता है—पिछले एक महीने से आपके दफ्तर में मेरा राशन कार्ड पड़ा हुआ है। दफ्तर के लोग घूस चाहते हैं। नहीं बना रहे हैं।

नाटक के सत्यव्रत से साधारणीकरण तो दर्शक को करना ही होगा लेकिन जहाँ यह संवाद उसे नायक की नियति के प्रति अधिक संलग्न करेगा वहीं अपने घर की स्थिति के बारे में भी ज्यादा चिंतित या क्षुब्ध करेगा। इस बीच वह बारी-बारी से कभी नाटक को पकड़ेगा कभी अपनी जिन्दगी को।

जो नाटक अपनी जिन्दगी के प्रति दर्शक को उदासीन करता है या उसकी अपनी जिन्दगी नाटक के क्षणों में भुला देता है वह मनोरंजन होता है, नाटक नहीं।

अपनी जिन्दगी पर पकड़ 'लड़ाई' से भी मजबूत होती है और 'ठहरा हुआ पानी' से भी। हाँ, दोनों के कार्यक्षेत्र अलग होते हैं। ज़िन्दगी पर यह पकड़ तुगलक से भी होती है। उसका कार्यक्षेत्र भी अलग है।

मानवीय जीवन इतिहास में बहुत दूर तक अपनी जड़ें फैलाए रहता है भले ही जाने या अनजाने। इसलिए जहाँ 'लड़ाई' जीवन के एक पहलू पर दर्शक की पकड़ मजबूत करता है 'तुगलक' किसी दूसरे पहलू पर।

सच बात यह है कि अतीत के भारतीय काव्य या नाट्य-सिद्धान्तों में से बहुत कुछ ऐसा है जिसे पण्डितों से मुक्त करना होगा और नये सन्दर्भ देने होंगे। इस तरह निश्चय ही हमारी रंगदृष्टि समृद्ध होगी और अधिक सूक्ष्म चिन्तन कर सकेगी।

हमने ऊपर सूत्रधार से शुरू करके साधारणीकरण तक की जो चर्चा की उसका उद्देश्य सिर्फ़ यह रहा है कि कौन-से तत्त्व कृति को नाटक बनाते हैं और नाटक किस स्थिति में नाटक हो जाता है, इन सवालों की कुछ परख हो सके।

एक जगह मैंने लिखा था कि नाटक के लिए दर्शक हों ही यह ज़रूरी नहीं है। ऊपर की बात का इससे कोई विरोध नहीं है। नाटक का दर्शक या भोक्ता स्वयं रंगकर्मी भी हो सकता है मगर वह कुछ विशेष रचनाओं में ही। 'बकरी' या 'जुलूस' को दर्शक चाहिए ही। ब्रेख्त या ओनील के नाटक को दर्शकों की ज़रूरत रहेगी ही। लेकिन जिन लोगों ने बनारस की रामलीला देखी है (रामनगर की नहीं) वे इस बात की तस्दीक करेंगे कि वह एक अनुष्ठान है जिसके हिस्सेदारों की ज़रूरत होती है, दर्शकों की नहीं। कुछ नाटक ऐसे ज़रूर हो सकते हैं जिन्हें दर्शक की ज़रूरत न हो।

× × ×

प्रस्तुत नाटक 'डाकू' काफी पहले लिखा गया था और दिशान्तर के लिए गुलशन कपूर ने पंचानन पाठक के संगीत के साथ इसका पूर्वाभ्यास भी शुरू कर दिया था। बाद में क्या हुआ, मैं खुद नहीं जानता। इसके पाठ

के समय नेमिचन्द्र जैन मौजूद थे। उन्होंने इसमें दो-तीन आपत्तियाँ की थीं। उनकी पहली बड़ी आपत्ति थी इसकी वर्णनात्मकता। इस नाटक में कई बड़ी घटनाओं का सिर्फ़ ब्योरा दिया गया था। छन्दों में मैंने एकाध मस्खरे प्रयोग कर डाले थे मस्लन् 'दौड़' की पहली तीन पंक्तियों के बजाय ज़रूरत के अनुसार दस-बारह भी कर दी थीं। तब मैं सोचता था मैं रचनाकार हूँ, ऐसी आजादी क्यों न लूं? बाद में अक्ल आई कि लोक विधाओं में ऐसी आजादी कला के साथ बलात्कार होती है।

नाटक उस वक़्त हुआ नहीं, एक साहित्यिक पत्रिका 'और' में प्रकाशित हुआ था और मेरे कुछ युवा साथियों ने कहीं इसका अपने मूल रूप में ही, मंचन भी कर डाला था। दुर्भाग्य से वह ब्योरा इस वक़्त उपलब्ध नहीं है।

तब से यह पाण्डुलिपि के रूप में पुनर्लेखन के लिए पड़ा रहा।

अभी थोड़े दिन पहले काशीनाथसिंह ने मंचन के लिए इसकी माँग की। तब मुझे लगा, बहुप्रतीक्षित पुनर्लेखन जल्दी कर लेना चाहिए।

इस बार पुनर्लेखन में इसके मूल कथ्य में कुछ और ज्यादा समसामयिकता आ गई क्योंकि पिछले कुछ अरसे में वर्तमान शासन ने हालात बेहद बिगाड़ दिए। गरीब आदमी पर अत्याचार, पुलिस द्वारा आक्रान्त समाज और डाकू-राजनेता गठबन्धन के साथ-साथ औरत की इज्जत पर डाके की अमानवीय घटनाएँ सामने आईं। 'डाकू' नाटक उस वक्त लिखा गया था जब जयप्रकाश नारायण उनसे आत्मसमर्पण करा रहे थे और मध्य प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमन्त्री इस बात से नाराज़ थे कि यह श्रेय उन्हें क्यों नहीं मिला।

यह स्थिति अप्रासंगिक हो चुकी होगी, इसलिए इसे निकाल ही दिया गया। डाकू और पुलिस और नेता के चरित्र आज जनता के सामने क्या हैं, अब इसी पर ज्यादा जोर है।

पहले आलेख में स्त्री और बचनराम के बीच प्यार का एक हास्यास्पद-सा नुस्खा इस्तेमाल में लाया गया था। इस बार वह हास्यास्पद बनने से बचाया गया है। दोनों के प्रारम्भिक टकराव और फिर राजीनामे की घटना उत्तर प्रदेश के एक अच्छे सवाल-जवाबी रसिया की पैरोडी से चित्रित की गई है।

नाटक में पहले संवाद अवधी में थे और मात्र हास्यपरक। इस बार उन्हें कुछ नाटकीय, मानवीय और यथार्थवादी बनाने का प्रयत्न किया गया है।

इसमें चार कैदी हैं, चार गाँव के आम आदमी हैं। ये सभी कोरस जैसी युक्ति के इस्तेमाल से निभाए जा सकते हैं।

इस समय नौटंकी जिस रूप में है उसमें सिर्फ़ एक नयी बात करने की कोशिश मैंने की है। कोई भी नौटंकी कथा में 'फ्लैश बैक' पद्धति से नहीं लिखी गई। 'आला अफ़सर' भी नहीं।

'डाकू' में फ्लैशबैक का इस्तेमाल है। प्रारम्भिक वंदना के समय डाकू बचनसिंह आता है और लोगों को लूटता है पर औरत को हाथ नहीं लगाता।

इसके बाद वह बताता है कि औरत को न छूने की एक वजह है। वजह है वह घटना जिसने उसे डाकू बनाया। तब वह उस घटना का बयान करता है। इस तरह बचनराम के डाकू बचनसिंह बनने की कहानी सामने आती है।

आम नौटंकी में लावनी या कुछ दूसरे छंदों का प्रयोग तो होता है, रसिया वग़ैरह उनमें लिखे नहीं होते। रसिया के इस्तेमाल का चुनाव कलाकार स्वयं ज़रूरत के अनुसार करते रहे हैं और श्रीमती गुलाब बाई इस दिशा में स्मरणीय हैं जिन्होंने देश के अत्यन्त लोकप्रिय रसिया तैयार किए और नौटंकी में प्रयुक्त किए। डाकू के मूल आलेख में रसिया नहीं थे। रसियों का समावेश कानपुर की परम्परा से उधार लेकर पुनर्लिखित आलेख में मैंने किया।

गद्यसंवादों का प्रयोग होने के कारण भी यह कानपुर शिल्प की नौटंकी लगेगी, लेकिन इसे हाथरस शैली की गायकी को ही ध्यान में रख-कर लिखा गया है। यह बताना इसलिए जरूरी है कि इसे शुद्ध कानपुर शैली में गाने पर छन्दों की फेरबदल ज़रूरी होगी यानी उस हालत में जहाँ दोहा है वहाँ शायद बहरतवील ज़्यादा ठीक लगे या जहाँ बहरतवील है वहाँ चौबोला। यह कठिनाई पेशेवर गायक महसूस करेंगे। वैसे काम चलाने को किसी भी शैली या शैलियों के मिश्रण का इस्तेमाल हो सकता है।

—मुद्राराक्षस

श्री जे० एन० कौशल
और
श्री पाल जेकब
को

डाकू

[कोरस के कुछ लोगों के साथ रंगा और दूसरे प्रमुख पात्र रंगपटी के साथ आते हैं। रंगपटी पर उनका देवता है।]

सभी : (प्रार्थना)

सदा स्वागतम् मन मन्दिर में।
अन्धकार में जैसे हंडा,
साँड़ गली का हो मुश्टंडा,
ऐसे राजा के नाती की कृपा पावतम् मन मन्दिर में।
मुँह में राम बगल में ईंटा,
जनता के सुथने के चींटा,
ऐसे नेता जी से झुककर क्षमा माँगतम् मन मन्दिर में।
बीवी फूल लगाए गेंदा,
अफसर का चिकना है पेंदा,
माल मेज के नीचे होकर सदा आवतम मन मन्दिर में।
आया डाकू जग चिल्लाना,
ढोल बजाए गाए थाना,
पत्रकार फूलन देवी की कथा गावतम् मन मन्दिर में।

[गाते हुए निकल जाते हैं। सिर्फ कोरस के कुछ लोग मंच पर इस तरह बैठ जाते हैं गोया खाना पका रहे हों।]

रंगा : (दोहा)

सुनी होयगी आपने डाकू कथा अनेक।
अब हमसे सुन लीजिये कथा गाँव की एक॥

(कव्वाली)
कीच-सा लिपटा हुआ है आपके जो पाँव में।
आदमी वो देख लीजे आप चलकर गाँव में।।
सेठ साहूकार हैं नेता सिपाही साथ हैं।
फिर लगाई जा रही है द्रोपदी लो दाँव में।।
मौज है मस्ती भी है हाकिम भी है हथियार भी।
आदमी जीता है लेकिन लाठियों की छाँव में।।
रोज लुटते, रोज घर जिनके जलाए जा रहे।
खे रहे हैं जिन्दगी वो आज टूटी नाव में।।

व्यक्ति एक : (**व्यक्ति दो से**) लकड़ी उठाओ, बाकी दो रोटियाँ भी सेंक लूँ। (**बचनराम से**) तुम भी खाओ बचनराम !

बचनराम : मैं कसम खा रहा हूँ—

व्यक्ति दो : (**लकड़ी देते हुए**) क्या खा रहे हो ?

बचनराम : (**उसी उत्तेजना के जनून में बोलता है**) मैं कसम खा रहा हूँ—

व्यक्ति दो : टेंट खाली हो तो आदमी और क्या खायगा—कसम खाएगा।
या गम खाएगा।]

व्यक्ति तीन : या जूता।

बचनराम : मैं कसम खा रहा हूँ, सुन लो तुम लोग।
बदला लूँगा।
जिस दिन पा गया अकेला उसको,
चबा डालूँगा बोटी-बोटी।
मैं कसम खा रहा हूँ, सुन लो तुम सब लोग।
मैं बहुत घिनौना बदला लूँगा।

व्यक्ति दो : सिर्फ धुआँ दे रही है लकड़ी।

बचनराम : ताना मार रहे हो ?

व्यक्ति तीन : लकड़ी गीली है क्या ?

धुआँ बहुत है, रोटी कड़वा जाएगी।

व्यक्ति एक : वैसे ही कौन बड़ी मीठी होती है सूखी रोटी।
और नमक की पथरीली डली।
दिन-भर बदन तोड़ने के बाद,
किसे ध्यान आता है क्या होता है स्वाद।
मुँह से फूँको।
लपट निकलते ही समझो सिंक गई।

बचनराम : मुझे नहीं खानी है रोटी।
सुन लो तुम लोग,
रोटी को तब तक हाथ नहीं लगाऊँगा।
जब तक बदला न ले लूँ।

व्यक्ति दो : इसको समझा दो, इस तरह हमें भी ले डूबेगा।

बचनराम : डूब मरो तुम लोग।
मुझे समझाने से अच्छा है सचमुच ही डूब मरो तुम लोग।

व्यक्ति तीन : हमसे मत चिढ़ो।
समझे ?—हम पर मत चीखो।
हमको भी पीटा था हाकिम ने।
नेतराम को, भूरे को, सबको पीटा है।
हमसे पहले भी होता था यह सब।
पीढ़ियों से होता आया है, आज क्या नया हो गया ?

बचनराम : तुम सब सहते हो सहो,
जैसे रहते आए हो रहो।
मैं बदला लूँगा, समझे ?—मैं बदला लूँगा।

व्यक्ति एक : आग आग-सी हो तब न ?

बचनराम : क्या मतलब !

व्यक्ति तीन : हवा करो वरना लकड़ी गीली है, बुझ जाएगी।

व्यक्ति दो : हाकिम तो आखिर हाकिम है।
मारपीट करता है तो गुड़ भी देता है हर साल।
चने की बोरी के साथ।

बचनराम . हाकिम का घोड़ा भी खाता है चने ।
व्यक्ति तीन : घोड़ा हाकिम का हो तो चने नहीं क्या
गाली या जूते खाएगा, हम लोगों की तरह ?
[दूर से एक स्त्री की चीख । सभी सन्नाटे में आ जाते हैं ।]
व्यक्ति एक : (उठकर किनारे जाता है, दूर कुछ देखने-सुनने की कोशिश करता है । फिर चीख)यह तो शायद बचनराम की बीवी चीखी थी ?
व्यक्ति दो : शायद ।
बचनराम : (हाथ में थामी लकड़ी इतने जोर से मोड़ता है कि वह टूट जाती है ।)
(दोहा)
जुल्म गया हद से गुजर धीरज छूटा जाय ।
बदला लूँगा आज मैं कहता कसम उठाय ।।
(बहरतवील)
सह चुका हूँ बहुत जुल्म इनके यहाँ,
खेल अस्मत से खेला पिया खून है ।
फैसला आज हो जायगा आखिरी,
हो गया शेर खूंखार मजलूम है ।।
[बचनराम की बीवी परेशान हाल आती है, पीछे-पीछे हाकिम उसे पकड़ने की कोशिश में । यकायक सभी लोग उठ पड़ते हैं जैसे विद्रोही हो उठे हों ।]
बचनराम : (दोहा)
खबरदार मजलूम की सुन ले आज पुकार ।
जीवन-भर हमने सहा अब सँभाल तू वार ।।
पत्नी : (दोहा)
जीता इसे न छोड़ना तुम मत करियो देर ।
दण्ड पाप का दो इसे आज सभी लोग घेर ।।
(चौबोला)
इसे सभी लो घेर न लूटे हमें यहाँ दोबारा ।

सदा-सदा के लिए तुम्हारा दुश्मन जाए मारा ।।
कब तक दबकर रहोगे कब तक जब्त करोगे ।
कब तक तुम मानोगे इसमें खोटा भाग हमारा ।।
[लोग धीरे-धीरे हाकिम को घेरते हैं ।]
वाचक : (दौड़)
बात सही है आओ ।
मुट्ठी कसी उठाओ ।
घेर लें आओ दुश्मन ।
पहचानो किसने कर डाला जहर हमारा जीवन ।।
हाकिम : (बहरतवील क्षोभ के साथ)
कौन मक्कार हिम्मत दिखाता है यहाँ,
देख लूं कौन सरकश उठाता है सर ।
(लोगों के तेवर से घबराकर तुरन्त बात बदलता है ।)
बस करो, बस करो, लाओ मुझ पर यकीं,
खैरियत आपकी लेने आया इधर ।
कुछ गलत फहमियाँ इस बहन को हुई,
मैं तो राजा का भेजा हूँ आया इधर ।
आप तकलीफ में हैं हमें इल्म है,
साथ इम्दाद कुछ मैं हूँ लाया यहाँ ।।
व्यक्ति एक : (कुछ ढीला पड़ता हुआ)
इम्दाद ?
व्यक्ति दो : अनाज मिलेगा ।
या रुपए ?
व्यक्ति तीन : इम्दाद यहाँ खुद लेकर आया है हाकिम ?
पत्नी : (बहरतवील)
चाहे भूखे रहें चाहे प्यासे मरें,
जो मुसीबत पड़े वो उठायेंगे हम ।
इसके कहने में हर्गिज न आना कभी,
फैसला आखिरी है तुम्हारी कसम ।।

हाकिम : (बहरतवील)
ठीक है गर मदद तुमको लेना नहीं,
लेके जाऊँगा इम्दाद वापस चला।
हमने सोची तुम्हारे भले की सदा,
और हमसा न पाओगे हाकिम भला ।।
[हाकिम जाने लगता है]

व्यक्ति एक : मैं पहले ही कहता था।
बना बनाया खेल बिगाड़ने में माहिर है बचनराम।

व्यक्ति दो : हाकिम चला गया।
इम्दाद भी चली गई ही समझो।
[हाकिम मुस्कराकर जाता है।]

व्यक्ति एक : मैं तो पहले ही कहता था।
गाय दुधारू हो लात तो सहनी पड़ती है।

व्यक्ति तीन : अभी वक्त है।
चलो मना लें चलकर बचनराम के चक्कर में—

बचनराम : (दोहा)
मेहनत पर तुम जी रहे किससे हो मजबूर।
जूती में ये रोटियाँ मुझे नहीं मंजूर ।।
[लोग बिना कुछ सुने हाकिम के पीछे चले जाते हैं, बचनराम पत्नी को साथ लेकर दूसरी ओर चलता है।]

रंगा : (मर्सियाखानी)
जलती हुई मशाल बुझाती हैं रोटियाँ।
लाचारियाँ भी साथ खिलाती हैं रोटियाँ ।।
मजबूर की गर्दन को झुकाती हैं रोटियाँ।
इंसान को नादान बनाती हैं रोटियाँ ।।
हाकिम ने मदद का जो लिया नाम सुनो जी।
सब भूल गये जो भी हो अंजाम सुनो जी ।।
भोले थे लोग आ गए शातिर की चाल में।
बिकने के लिए हाथ में थे दाम सुनो जी ।।

उस वक्त गया हार बचनराम सुनो जी।
हिम्मत न वहाँ उसके आई काम सुनो जी ।।
जिस जंग में मजलूम ही हो जाएँ अकेला।
होगा भी और क्या यहाँ अंजाम सुनो जी ।।
आगे करूँ मैं और बयां हाल सुनो जी।
मैं ले चलूँ जहाँ पे कटे माल सुनो जी ।।
नोटों से तोल वोट को सत्ता में आए जी।
राजा बड़े फुलाए दोनों गाल सुनो जी ।।
[महाराजा आईना देखते आते हैं।]

महाराजा : ओ बे हाकिम देख ले इधर-उधर दे ध्यान।
सुनता हूँ होते यहाँ दीवारों के कान ।।

हाकिम : (बहरतवील)
कुछ फिकर मत करें कोई सुनता नहीं,
आप दें हुम कैसी मैं खिदमत करूँ।
तन्त्र मन्तर कराऊँ किसी साधु से,
आपका कोई सन्देश फूलन को दूँ ।।

महाराजा : (दौड़)
शटप उल्लू के नाती।
हया कुछ तुझे न आती।
न यों सब बोला जाए।
राजनारायण घूम रहा है छुट्टा घात लगाए ।।
(बहरतवील)
हैं विरोधी हमारे बड़े काइयाँ,
खींच चुपके से तस्वीर लेंगे यहाँ।
बाद में छापकर उसको अखबार में,
न्यूज पेपर में खा जायेंगे मेरी जाँ ।।
दैदिल में भी देखो पड़ी फूट है,
इक अविश्वास प्रस्ताव भी आ रहा।

कुछ करो काम ऐसा कि अखबार में,
नाम चमके मेरा मुल्क-भर में यहाँ ।।

हाकिम : (बहरतवील)
काम समझें अभी चुटकियों में हुआ,
आपका सारे अखबार गुन गायेंगे ।
जो जगन्नाथ मिसरा ने प्रेस बिल दिया,
हम उसे करके लागू अभी आएँगे ।।

महाराजा : अबे मरवाएगा । न घर का रखेगा न घाट का ।
जीते जी दिखाएगा मुझे नजारा उल्टी खड़ी खाट का ।।
(दोहा)
राजा से सब चाहते सबका दुःख लूँ बाँट ।
वरना मेरे शत्रुजन पत्ता देंगे काट ।।
(दोबोला)
पत्ता देंगे काट इसी से कुर्सी कसकर थामी ।
अब कुछ गर ना किया जगत् में होगी ही बदनामी ।।
इसीलिए तुम बाहर जाकर जनता से मिल आओ ।
जनता के सुख-दुःख की फौरन यहाँ खबर ले आओ ।।
(दौड़)
हरूँ जनता के दुःख को ।
मिलाओ प्रेस से मुझको ।।
खिचे फोटो मन भाया ।
नमक मिर्च के साथ खबर अखबारों में हो शाया ।।

हाकिम : अभी पता लगाता हूँ सरकार ।
[हाकिम पता लगाने चल पड़ता है । राजा भी जाता है ।]
(दोहा)
हाय अफसरी कष्ट की मुझसे सही न जाय ।
ऐसा दिन भी देखना था रे मुझको हाय ।।
(बहरतवील)
हुक्म है जाके जनता के मैं हाल लूँ,
और उसके दुःखों की रपट भी करूँ ।

कष्ट की नौकरी उनसे मिलना मुझे,
जिनको ताजिन्दगी मैं लगाऊँ न मूँ ।।
[जाता है ।]

रंगा : (दोहा)
मालिक का लेकर हुक्म माथ अदब से नाय ।
जनता का दुःख पूछने हाकिम पहुँचा जाय ।।
[कुछ लोग आकाश की ओर हाथ उठाए आते हैं ।]

लोग : (लोकगीत)
अल्ला मेघ दे पानी दे···

हाकिम : नमस्ते ।

व्यक्ति एक : हाकिम नमस्ते कर रहा है । किसको ?

व्यक्ति दो : कर रहा होगा किसी को भी नमस्ते ।
हमें नमस्ते करता तो जूते दस-पाँच
मार बैठा होता यह अब तक ।

व्यक्ति तीन : हमें क्या ?
अल्ला मेघ दे पानी दे···

हाकिम : अरे भाई सुन तो लो ।
(गाना रुकता है ।)
राजा जी ने हुक्म दिया है—

व्यक्ति चार : हुक्म ही दे सकते हैं राजा जी ।
रोटी कपड़ा और नौकरी हमको क्या देंगे ।

व्यक्ति एक : पीने का पानी तक माँग-माँगकर सूख गए हम ।

व्यक्ति दो : हुक्म ही हमको दे सकते हैं राजा जी ।
और हमें क्या देंगे ? बोलो ?

हाकिम : मैं एक अच्छी खबर लाया हूँ ।

व्यक्ति तीन : खबर लाए हैं हुजूर ।
एक अदद हुक्म और एक अदद खबर ।

व्यक्ति चार : अब तो पेट भर ही जायगा ।
(डकार लेता है ।)

हुक्म को खाओ और खबर को पियो।
पेट तो भर ही जाएगा (**फिर डकार लेता है।**)

हाकिम : अरे भाई, हुक्म हुआ है कि अपनी मुसीबत बताओ।

व्यक्ति एक : क्या बताएँ ?

हाकिम : अपनी मुसीबत बताओ।

व्यक्ति चार : हमारी मुसीबत तो राजा जी खुद हैं।

हाकिम : ऐं ! कौन बोला ?

व्यक्ति चार : कोई नहीं।

हाकिम : तुम बोले थे अभी···

व्यक्ति चार : मैं तो गूंगा हूँ। मैं कैसे बोलूँगा भला ?

सभी : हाँ हम सब गूंगे हैं।

व्यक्ति चार : और फिर अपनी मुसीबत हाकिम को बताकर
कौन ले मोल और भी बड़ी मुसीबत।

सभी : इसीलिए हम गूंगे हैं। हम कैसे बोलेंगे ?

हाकिम : बड़े जाहिल हो तुम लोग।

सभी : सही बात है साहब, गधे भी हैं हम सब।

हाकिम : तुम लोग मानते क्यों नहीं ?
किस्मत खुल जायगी, किस्मत !

व्यक्ति एक : हमारी किस्मत तो कब से बन्द है।

व्यक्ति दो : किस्मत पर ताला है ताला···

व्यक्ति तीन : हाँ इत्ता बड़ा ताला !

सभी : (**निर्गुण**)
किस्मत पर है ताला हो रामा सुन निरगुनियाँ ॥
हाकिम देखा हिकमत देखा।
चीनी देखा चावल देखा।
दाबे बैठा लाला हो रामा सुन निरगुनियाँ ॥
कौआ कान में पहने झुमका।
हंसा नाचे दे दे ठुमका।
अपन बजावें गाला हो रामा सुन निरगुनियाँ ॥

फूटी हाँड़ी चूल्हा ठंडा।
राजा जी का खाए डंडा।
रिश्वत काटे साला हो रामा सुन निरगुनियाँ ॥
चोर बनाए बैठा थाना।
लूटे राजा जग चिल्लाना।
पियो मूत का प्याला हो रामा सुन निरगुनियाँ ॥
किस्मत पर है ताला···

[**लोगों से घबराकर हाकिम भाग जाता है। लोग गाते हुए जाते हैं।**]

रंगा : (**दोहा**)
आया हाकिम लौटकर जनता से घबराय।
बड़े कमीने लोग हैं, वापस बोला आय ॥

[**हाकिम महाराजा के पास आता है।**]

हाकिम : हुजूर—

(**दौड़**)
लोग हैं बड़े कमीने
सुखी गरीबी ही में।
जिगर जनता का काला।
बिच्छू को तुम हाथ उठा लो डंक मार दे साला।

महाराजा : (**दोहा**)
बात ठीक तू कह रहा मेरे हाकिम वीर।
सिर्फ वोट के वास्ते पड़े दिखानी पीर ॥

(**बहरतवील**)
जो गरीबी हटाओ का नारा दिया,
वो जरूरी है इस वक्त की माँग है।
मैं करूँ फिक्र क्यों है मुझे क्या पड़ी,
जबकि सारे कुएँ में पड़ी भाँग है ॥
मुझको तरकीब बेजोड़ सूझी है इक,
डाकुओं का समर्पण करा दो यहाँ ॥

इन दिनों पत्रकारों को भाए यही,
और गुन मेरे भी गाए सारा जहाँ

(दौड़)

बड़ा-सा मंच सजाओ।
कहीं से डाकू लाओ।।
करे वो आत्म-समर्पण।
जाओ डाकू लाओ फिर करवाओ मेरा भाषण।।

[हाकिम फिर चल पड़ता है।]

रंगा : डाकू खोजने को चला हाकिम देस विदेश।
सच कह दें उससे अगर लगे कलेजे ठेस।।

[कुछ डाकू आते हैं।]

डाकू : (दादरा)

हम डाकू सरदार हो बोलो बम भोले।
मारें तो मारें रोने न देवें।
कुछ ना सुनैं भगवानौ सीवें।
कौवा बजाय सितार हो बोलो बम भोले।
चोर-चोर मौसेरे भाई।
नेता डाकू चोर सिपाही।
सबकी चलै सरकार हो बोलो बम भोले।

सरदार : (हाकिम को घेरकर)

कौन हो? खबरदार!

हाकिम : अरे भाई, कौन हो तुम लोग?

सरदार : तू कौन है, फौरन बता वरना गोली मार दूँगा।

हाकिम : (दोहा)

मैं हाकिम सरकार का चला जरूरी काम।
आप साधु से दिखे हैं क्या श्रीमन् का नाम।।

डाकू : (दोहा)

समझा तूने खूब है मैं डाकू महाराज।
जब तक ये बन्दूक है मैं राजा बेताज।।

(बहरतवील)

छोड़ दो इसको निकला हमारा सगा,
हाँ बताओ करें कैसी खातिर अभी।।
जानते एक दूजे को हम खूब हैं,
इस महीने का नजराना ले लें कभी।।

हाकिम : (बहरतवील)

आ ही जाएगा नजराना मैं मुतमइन,
बात कुछ और ही आपसे बोलनी।
मेरे मालिक ने चाहा समर्पण करें,
छोड़ बन्दूक दें आप डाकू सभी।।

डाकू : (दोहा)

हम तीनों का चलेगा सोचो कैसे काम।
अगर डकैती छोड़ दूँ जीना होय हराम।।

(दोबोला)

जीना होय हराम सुनो अब बात ध्यान से मेरी।
दो गाँवों को मुझे लूटना अगली रात अन्धेरी।।
राजा से बोलो बन्दूकें नई सात भिजवाएँ।
उसके बदले लाख रुपैया की थैली ले जाएँ।।

(दौड़)

और अब फौरन जाओ।
वहाँ सन्देश सुनाओ।
बोल दी बात सही है।
तुरत फूट ले हाकिम बेटा वरना खैर नहीं है।

[डाकू जाते हैं।]

रंगा : (दोहा)

डाकू को डाकू मिला डाकू है घबराय।
डाकू ही हो सामने डाकू क्या कर पाय।।
हाकिम फिर दौड़ा गया राजाजी के पास।
डाकू का सन्देश भी कहा रोककर साँस।।

हाकिम : हुजूर-हुजूर।

महाराजा : क्या हुआ ? डाकू कोई मिला ?

हाकिम : मिला।

महाराजा : शाबाश ! काम के आदमी हो। उत्तर प्रदेश का सांस्कृतिक कार्य निदेशक बना दूँगा। जल्दी बोलो क्या हुआ ?

हाकिम : हुजूर, उसने कहा है कि दो गाँवों में अगली अमावस्या को डकैती डालने जा रहा है और आप उसे सात बन्दूकें भिजवा दें। बदले में वो आपको लाख रुपया देगा।

महाराजा : अबे बेशऊर ! इस तरह की बातें और यों सरे आम ?

हाकिम : हुजूर फिर ?

महाराजा : ऐसी प्राइवेट बातें कान में किया कर, कान में।

हाकिम : हुजूर एक बात और—

महाराजा : ऐं ! एक बात और ? पब्लिक या प्राइवेट ?

हाकिम : प्राइवेट है हुजूर।

महाराजा : अबे कहा ना कान में कर कान में।

हाकिम : मगर हुजूर मुझे तो पेशाब आई है।

महाराजा : अबे हट !

(दोहा)

बात जरा अब ध्यान से सुन लो सचिव सुजान।
बनवानी है खबर जो छाप सके दिनमान॥

(बहरतवील)

मेरी सारी रियासत का दौरा करो,
और ढूँढ़ो यहाँ पर कोई इक बशर।
लगता डाकू हो सूरत से और शकल से,
उसको फौरन बुला लाओ जाकर इधर॥
दो उसे कुछ रकम और बन्दूक भी,
आके कर दे समर्पण उसे दो सिखा।
खींच फोटो उसे जेल में भेज दो,
बाद में उसको चुपके से करना रिहा॥

हाकिम : तरकीब बेहतरीन है हुजूर—अर्जुनसिंह भी मात ख
जायेंगे।

(दोहा)

हर गरीब लगता यहाँ डाकू ही सरकार।
नहीं लगे तो बना दूँ डाकू हण्टर मार॥

[फिर चल पड़ता है।]

रंगा : (दोहा)

रुपयों की थैली लिए हाकिम चला सुजान।
नकली डाकू खोजने बात जाय जो मान॥

(मसियाखानी)

थैली में लिए नोट चला खोजने डाकू।
पैसे की खा के मार जो हँसकर बने डाकू॥
मैं कर रहा हूँ हाल बयाँ और सुनो जी।
हाकिम ने किया खेल वहाँ और सुनो जी॥
जिस एक बचनराम की बीवी पर नजर थी।
उसको फँसाया जाल में बस इतनी कसर थी॥

व्यक्ति एक : हाकिम फिर आ गया।

व्यक्ति दो : बार-बार आ रहा है।

व्यक्ति तीन : मुस्कुरा रहा है।

व्यक्ति चार : मुस्कुरा रहा है तो भागो, सिर पर पाँव रखकर भाग लो भाई।

व्यक्ति एक : मगर भागें तो भागकर जायें कहाँ ?
उधर डकैत हैं…।

व्यक्ति दो : और इधर मुस्कुराता हाकिम।

व्यक्ति तीन : फिर भी भागो—डकैतों की तरफ ही भागो।

व्यक्ति चार : हाँ, डकैतों की तरफ भाग लो।
डकैत की गोली से तुरत मौत होती है,
हाकिम की मुस्कुराहट रेत-रेत कर मारेगी।
तू भी भाग रे बचनराम…।

बचनराम : (दोहा)
दीनों को मिलना नहीं यहाँ सुरक्षित ठौर।
इस दुनिया में जायेंगे कहाँ भागकर ग्रौर।।

हाकिम : (दोहा)
डरने की क्या बात है समझो ग्रपना मीत।
दीनों की पूजा करूँ यही हमारी नीत।।

बचनराम : (दोहा)
(जनान्तिक)
मीठा ऐसे बोलता जैसे भोली गाय।
मौका पाए ग्रापको कच्चा ही खा जाय।।

स्त्री : (दौड़)
बात मत इसकी सुनियो।
बड़ों से बचकर रहियो।।
दूध जो इसे पिलाया।
डस लेगा, इसने नागों से बढ़कर खसलत पाया।।

हाकिम : (दोहा)
तुमको ग्रपना समझ कर ग्राया हूँ इस ठौर।
डरो न मेरी बात पर जरा करो तुम गौर।।
(चौबोला)
जरा करो तुम गौर, महाराजा ने मुझे पठाया।
वे हैं नेक रहमदिल तुम पर तरस उन्होंने खाया।।
होंगे मालामाल ग्रगर तुम उनकी बात सुनोगे।
राजा जी ने सदा दीन का है उपकार कराया।।

बचनराम : (दोहा)
राजा जी को पड़ गया क्या है मुझसे काम।
मैं लोहार का पुत्र हूँ बचनराम है नाम।।

हाकिम : (बहरतवील)
ध्यान देकर सुनो बात मेरी जरा,
बात है राज की सुन न लेवे कोई।

मुझको भेजा गया तुमको लेने को है,
चूँ चपड़ की जरूरत न होवे कोई।।
काम तुम गर निभाग्रोगे ग्रच्छी तरह,
ऐशो इशरत की होगी न तुमको कमी।
ग्रौर तुमने ग्रगर की जरा भी उजर,
मार मुठभेड़ में तुमको देंगे ग्रभी।।

बचनराम : (बहरतवील)
एक चलती हुई लाश जिन्दा हूँ मैं,
मैं तो वैसे ही किस्मत का मारा हुग्रा।
मुझ पे खाग्रो रहम बख्श दो जां मेरी,
जो कहोगे करूँगा मैं दूंगा दुग्रा।

हाकिम : (बहरतवील)
माल दूंगा तुझे गर चले साथ तू,
ग्रौर दूंगा तुझे एक बन्दूक भी।
कर समर्पण झुका शीश राजा को दे,
ले कसम फिर डकैती न डाले कभी।।

बचनराम : (दोहा)
मैं गुरवत की मार का मारा हुग्रा हुजूर।
बदकारी डाकेजनी हमसे कोसों दूर।।

हाकिम : (दोहा)
बहुत हुग्रा ग्रब जान ले बुरा होय ग्रन्जाम।
रकम बड़ी तू पाएगा कर दे गर ये काम।।
ग्रौर फिर इसमें तेरा बिगड़ता ही क्या है ?
(बहरतवील)
तुमको मिल जाएगी एक बन्दूक जो,
उसको लेकर के चलना पड़ेगा वहाँ।
डाल देना उसे उनके कदमों में तुम,
सर झुका देना देखेगा सारा जहां।।

बाद में जेलखाने में पहुँचा दूँगा,
छोड़ दूँगा वहाँ से छुपे तौर पर।
लौट कर अपनी दुनिया में आ जाना तुम,
चैन से करना अपने शबी दिन बसर ।।

रंगा : दाम दण्ड की नीति से राजी हुआ गरीब।
इधर कुआँ, खाई उधर ऐसा बुरा नसीब ।।

बचनराम : **(अपनी बीवी से)**

(दोहा)

मैं जाता हूँ शहर को आया है इक काम।
रहो सुखी मेरी प्रिया लेकर प्रभु का नाम ।।

(चौबोला)

लेकर प्रभु का नाम महाराजा ने मुझे बुलाया ।
ऐसा अवसर आज बड़ी मुश्किल से मैंने पाया ।।
बड़े भाग से उनके दर्शन का ये मौका आया ।
शायद बदल जायें दिन मुझको है विश्वास दिलाया ।।

स्त्री : **(कव्वाली)**

रंज मेरा न कभी आप ध्यान में लाएँ।
करें मत मेरी फिकर आप चैन से जाएँ ।।
जो मुकद्दर में लिखा होगा वही होगा ही।
ध्यान बस अपना रखें जल्द ही वापस आएँ ।।
शक के बादल से उठे गम का अँधेरा छाया।
जाओ-जाओ कहीं आँसू न मेरे आ जाएँ ।।

बचनराम : **(कव्वाली)**

दर्दो-गम रंज की बातें मुझे सुनाया है।
ऐ मेरी जाने जिगर क्यों मुझे रुलाया है ।।
कौन है टाल सका जो भी मुकद्दर का लिखा।
बेवजह आँख से मोती यहाँ गिराया है ।।
रहो तुम चैन से रक्खे खुदा आबाद तुम्हें।
जाने दो अब खुशी से मोह क्यों बढ़ाया है ।।

स्त्री : **(दोहा)**

मुझे छोड़कर जा रहे यहाँ अकेली आज।
जल्दी आना लौटकर ओ मेरे सरताज ।।
[व्यक्ति एक चराग लाता है और स्त्री को देता है।]

स्त्री : **(माड़)**

हो राजा ड्योढ़ी पे दियना जराऊँ।

बचनराम : हो रानी दिउना जरे घर आऊँ।

स्त्री : हो राजा तोरे गए जी न लागे।

बचनराम : हो रानी ऐसे दिना कैसे काटे।

स्त्री : हो राजा गंगा में चुनरी चढ़ाऊँ।

बचनराम : हो रानी जाऊँ न जो परदेसा,
हो रानी कैसे कटे रे कलेसा।

स्त्री : हो राजा अँसुवा न अब मैं बहाऊँ।

बचनराम : हो रानी दिउना जरे घर आऊँ।

[सभी धीरे-धीरे जाते हैं। अन्धेरा]

कोरस : **(अन्धेरे में गाना शुरू करते हैं)**

(कव्वाली)

कफस से ठोकरें खाकर नजर जिस बज्म तक पहुँची,
उसी पर लेके इक तिनका बिनाए आशियाँ रख दी।
सुकूने दिल नहीं जिस वक्त से इस बज्म में आए,
जरा-सी चीज घबराहट में ना जाने कहाँ रख दी।
बुरा हो मुफलिसी का हम हुए बरबाद दुनिया में,
वहीं से आग जल उठी ये चिनगारी जहाँ रख दी।
किया फिर तुमने रोता देखकर दीदार का वादा,
फिर इक बहते हुए पानी में बुनियाद मकां रख दी।

[धीरे-धीरे उजाला होता है।]

रंगा : **(दोहा)**

बीवी से लेकर विदा नवा सभी को माथ।
बचनराम पहुँचा शहर था हाकिम के साथ ।।

[लोग सभा मंच का इंतजार कर रहे हैं।]

व्यक्ति एक : भोंपू तो लग गए। अब झंडियाँ लगेंगी ?

व्यक्ति दो : झंडियाँ किसलिए ? क्या शादी है ?

व्यक्ति तीन : बड़े हाकिमों का जलसा हो तो झंडियाँ लगेंगी ही,
चाहे जैसा जलसा हो।

व्यक्ति चार : सुना है बहुत बड़ा डाकू है, खूंखार।

व्यक्ति एक : कौन ? राजा ?

व्यक्ति दो : राजा जी की बात नहीं हो रही।
डाकू आया है कोई बचनसिंह···।

व्यक्ति तीन : बात एक ही है।
बड़ा कोई भी हो—
डाकू, राजा, अफसर, सेठ, दारोगा,
खूंखार तो होता ही है।

व्यक्ति चार : खूंखार न हो,
हम तुम जैसा गीदड़ हो,
तो कहो काम चल पाएगा भला ?

व्यक्ति एक : मगर यह जलसा है किसलिए,
जानता है कोई ?

व्यक्ति तीन : मुझे पता है।
डाकू आया है, जलसा उसी के लिए हो रहा है।

व्यक्ति दो : तब तो डाकू भाषण भी देगा,
माला भी पहनेगा,
बत्तख जैसे उजले खादी के कपड़ों में,
वोट भी माँगेगा !

व्यक्ति चार : वोट ही तो है हम लोगों के पास !
और कुछ होता तब तो देते।

व्यक्ति तीन : जूता होता तो जूता देते बच्चू को।
क्या कहें हम हैं नंगे पाँव।

[हाकिम सहसा आता है।]

हाकिम : कौन बकवास कर रहा है ?

व्यक्ति चार : हम क्या बोलेंगे साहब, मुँह में जबान ही नहीं।

व्यक्ति दो : हम तो गूंगे हैं गूंगे—

व्यक्ति तीन : बस हाथ ही रह गए हैं।
वही बोलें तो बोलें—हम तो गूंगे हैं।

हाकिम : कुछ भी नहीं हुआ अब तक—
मक्कारी की हद होती है।

[हाकिम गुस्से में चला जाता है।]

व्यक्ति एक : जल्दी हाथ चलाओ !

व्यक्ति तीन : हाँ, डाकू आता ही होगा वोट माँगने।

व्यक्ति चार : आता होगा।
हमको क्या देगा ?

व्यक्ति तीन : भाषण ! भाषण देगा।
भाइयो और भौजाइयो, बड़ी खुशी की बात है
हमारे देश में गरीबी है और समाजवाद है।
और हमारा देश बड़ा वो है—
और हम अब वो करेंगे—
हमें वोट दो, हम मतदान केन्द्र पर
दो पूड़ी फी आदमी खिलाएँगे।

व्यक्ति चार : अचार मुफ्त।

व्यक्ति तीन : (गा उठता है)
गरीबी की चिताओं पर करेंगे हर बरस भाषण।
अगर भूखे मरे हम तो यही बाकी निशां होगा।

[नेता हाकिम के साथ आता है। कोरस के व्यक्ति पत्रकार बन जाते हैं।]

महाराजा : (दोहा)
डाकू तो आ ही गया अब है कैसी देर।
आयोजन पूरा करो हरि की माला फेर॥

हाकिम : **(बहरतवील)**
जो करिश्मा अभी होने वाला यहाँ,
आपके ही चरण की कृपा जान लें।
पत्रकारों का दल एक आया जिसे,
भेंट अच्छी सी दे दें मेरी मान लें॥

महाराजा : **(बहरतवील)**
तुम तुरत पत्रकारों की खिदमत करो,
खाने पीने में इनके न हो कुछ कसर।
इनसे तस्वीर मेरी निखर आएगी,
इसलिए मानता हूँ इन्हें मैं पिदर॥
(कव्वाली)
मेहरबानी मेहरबानी कि आए आप मेरे घर।
बड़ी इज्जत बढ़ाई आनके इस नेक मौके पर॥

पत्रकार : यकायक इस करेले में शहद कैसे निकल आया।
बुलाने का जरा मकसद बतायें मेहरबानी कर॥

महाराजा : समस्या हल हुई डाकू समर्पण को निकल आया।
छपे फोटो तो हम सेवा करेंगे और भी बेहतर॥

पत्रकार : समर्पण ठीक है लेकिन इन्हें जो पालते हाकिम।
उठायेंगे किसे बन्दूक अपनी अब किराए पर॥

महाराजा : समझता राज हूँ अच्छी तरह से आपका भी मैं।
मुझे लगता जमाने के निकल आए हैं शायद पर॥

पत्रकार : दिखाई अस्लियत आखिर हमें आए हैं धमकाने।
जरा सा देख लें अपना भी चेहरा हाथ में लेकर॥

हाकिम : बिगाड़ें बात कुछ हर्गिज न गर आरोप है कोई।
बिठा देंगे कमीशन जाँच का इस बात के ऊपर॥

महाराजा : कि बेड़ा दुश्मनों का गर्क हो कीचड़ उठाते हैं।
अगर गलती लगे मेरी तो दे लें गालियाँ जीभर॥

पत्रकार : चलो छोड़ें बहस हमको बताएँ आप कुछ बातें।
समर्पण किसके आगे आप करने जा रहे प्रियवर॥

महाराजा : बयाँ मेरा गलत समझे यहाँ आया है इक डाकू।
बचनसिंह नाम है उसका जहाँ सुन काँपता थर-थर॥

पत्रकार : उसी डाकू के आगे क्या समर्पण कर रहे श्रीमन्।
जरा तफसील से अपना बयाँ दे दें हमें प्रियवर॥

महाराजा : गलतफहमी मिटा लें आप बातें ध्यान से सुनकर।
समर्पण मेरे आगे कर रहा डाकू यहाँ आकर॥
[यकायक नारा लगता है।]

कोरस : सम्मिलित नारा।
बोलो, डाकू महाराज की जय!
[महाराजा खुश होकर हाथ जोड़ता है।]

हाकिम : **(दोहा)**
ये जयकारा आपके लिए नहीं श्रीमान्।
डाकू की जय बोलते लोग यहाँ अनजान॥

महाराजा : **(झेंप और असन्तोष के साथ)**
मैं भी जानता हूँ। मुझे भी पता है।
(बहरतवील)
बोल दो डाकू आके गिरे पाँव पर,
और बन्दूक भी अपनी दे दे यहाँ।
इस तरह अब मुझे ये समर्पण करे,
मेरी जयकार से गूँज जाए जहाँ॥
[हाकिम इशारा करता है। बचनराम लाया जाता है।]

हाकिम : **(दोहा)**
आगे जाकर खड़ा हो, ऐ डाकू सरकार।
आत्म समर्पण के लिए हो जाओ तैयार॥
(चौबोला)
हो जा तू तैयार, तूझे चरणों में शीश झुकाना।
क्या है तेरा नाम, कहाँ डाके मारे ये बतलाना॥
अब न करेगा पाप न चोरी बदकारी ना डाका।
खा ले तू सौगन्ध उठा गंगाजल दे दे वादा॥

(बहरतवील)
मेरे मालिक को है पूजता कुल जहाँ,
इनको राजीव गाँधी भी हैं मानते।
रंज था सिर्फ छोटा-सा इनको यही,
कोई डाकू सगर्पण यहाँ आ करे।

बचनराम : (दोहा)
मैं सीधा सा गाँव का हूँ वाशिन्दा एक।
जिया मुफलिसी काटकर जीवन मेरा नेक॥
(बहरतवील)
मैं न रहजन हूँ और मैं न बदकार हूँ,
मैंने सीखा न कोई बुरा काम है।
सेठ हूँ ना सिपाही न नेता हुआ,
किन्तु डाकू कहाया बचनराम है॥
आज उल्टी बहाओ न गंगा यहाँ,
मेमना भेड़िए को न खाता कभी।
ओ सितमगर सुनो मैं मुसीबत जदा,
मुझको धोके में अपने न डालो अभी॥
मत कहो मुझको डाकू मैं मजदूर हूँ,
करता मेहनत कमाता हूँ खाता हूँ मैं।
जुर्म इतना है मैं इस तरफ हूँ खड़ा,
उस तरफ कुर्सियों पर जमे आप हैं॥

हाकिम : (दोहा)
क्या तेरा सिर फिर गया भेद रहा जो खोल।
क्या बकता है तू जरा सोच समझकर बोल॥
(चौबोला)
सोच समझकर बोल, सितम क्या तू करने वाला है।
भूल गया गर बात, अभी तेरा सिर कटने वाला है॥
अरे नीच इन्सान न कर तू ऐसी नमक हरामी।
खाल खींच ली जाएगी गर तूने की बदनामी॥

बचनराम : (बहरतवील)
आपका राज है आप जो भी करें,
डाकुओं से लुटें हम लूटें आप से।
लूट अस्मत हमारे ही रक्षक रहे,
और नेता न हाए हुए पाप से॥

हाकिम : (दौड़)
अबे मूरख क्या करता।
मुसीबत से ना डरता॥
हुक्म माने सरकारी।
रख नेता की बात जिन्दगी कटे ऐश में सारी॥
(बहरतवील)
याद रख तेरा चालान हो जाएगा,
और टुकड़ी पुलिस की बुला लूँगा मैं।
धर लिया जायगा आज इस्मा में तू,
और मुठभेड़ में मार फेंकूँगा मैं॥

बचनराम : (दोहा)
हुई भूल नाचीज से, माफ करो सरकार।
घोर पाप मैंने किये, हूँ डाकू बदकार॥
(कव्वाली)
मिले अब तो सजा भारी मुझे जुर्मों की सख्ती से।
करूँगा कौल मैं पूरा डरा हूँ नेकबख्ती से॥
न मुतलक भूल जाना तुम किया तुमने था जो वादा।
समर्पण मैं करूँगा दिन रिहाई में न हों ज्यादा॥
बड़े ही बेमुरब्बत हैं जो ऊँची शान वाले हैं।
निकलता काम हो इनका गधे को बाप मानेंगे॥
जहाँ गद्दी मिली इनको कि तोताचश्म बनते हैं।
चुनावों के दिनों में हाथ जोड़े झुक के चलते हैं॥
गरीबी पर करें भाषण उठाते हैं कसम सबकी।
गरीबों का क्लेजा तलके खा जाएँ न कापें जी॥

हाकिम : (दोहा)
बहुत हो चुकी देर है डाल अरे बन्दूक।
बचनसिंह इस काम में अब मत करियो चूक॥
[बचनराम आत्म-समर्पण करता है। तालियाँ, नारे बचन-सिंह को ले जाया जाता है।]

रंगा : (दोहा)
उत्सव तो पूरा हुआ पिटा दमामा खूब।
थे राजा जी तर गए इस शोहरत में डूब॥
(चौबोला)
सुख शोहरत में डूब महाराजा फोटो खिचवाएँ।
नाम छपा अखबारों में कवि लेखक मिल गुन गाएँ॥
बचनराम को डाल हथकड़ी कारागार पठाया।
आगे देखो क्या सत्ता ने अपना खेल दिखाया॥
[जेल में कैदी]
(दोहा)
चलिए अब हम ले चलें जरा आपको जेल।
बचनराम के साथ हो देखें कैसा खेल॥

व्यक्ति एक : डाकू ने हाथियार डाले।
खत्म हो गयी मुसीबत॥

व्यक्ति चार : मुसीबत खत्म हो गयी ?
किसकी ?
डाकू की या हम सबकी ?

व्यक्ति एक : डाकू की।
बाहर तो धोखे से गोली भी लग सकती थी।

व्यक्ति दो : धोखे से क्यों आखिर ?

व्यक्ति चार : पुलिस की गोली डाकू को धोखे से लग सकती है।
वरना—
गोली तो हम जैसों के लिए बनी है।
भाषण, खबर, हुक्म या गोली,

सिर्फ यही मिल सकती हैं,
चाहो तो माँग कर देखो कुछ भी—
भात या पानी या छप्पर का फूंस,
माँग कर देखो कुछ भी।

व्यक्ति तीन : माँग कर देखा है।
माँगते ही तो बीती है अब तक जिन्दगी।
उस बरस बाप ने माँगा था एक थान मारकीन।
अगले बरस बेटी भी उठा ले गए और थान भी।
भाई एक रपट लिखाने गया—जेल में है।
और दूसरा सिर्फ रो पड़ा था,
मुठभेड़ में मार गिराया गया।

व्यक्ति एक : पुलिस की गोली डाकू को धोखे से ही लगती है!

व्यक्ति दो : बड़ा दर्द है, कितने की आती होगी गोली ?

व्यक्ति एक : बन्दूक की ?

व्यक्ति दो : नहीं, माथे की पीड़ा की।

व्यक्ति तीन : उसका नहीं पता।
बन्दूक की गोली तो काफी महँगी आती है।

व्यक्ति एक : क्या यह मुमकिन नहीं,
कि मार दे आधी गोली, आधी के पैसे दे दे हमको ?
[बचनराम आता है, धीरे-धीरे, कैदी की पोशाक में।]

व्यक्ति एक : डकैत भी आ ही पहुँचा यहाँ।

व्यक्ति चार : डकैत होता तो यहाँ आता ?
चील गाड़ी पर उड़ रहा होता।

व्यक्ति दो : क्यों भाई, तुम क्यों पकड़े गये ?

बचनराम : मेरा कोई अपराध नहीं है।

व्यक्ति एक : तब तो लम्बी सजा काटेगा।

बचनराम : (दोहा)
कहो न ऐसा भूलकर अशुभ बात सच होय।
मेरी राह निहारती प्रिया मरेगी रोय॥

(चौबोला)

प्रिया मरेगी रोय, सुनाएँ मुझे न ऐसी बातें।
सुन लो मुझे नहीं काटनी बहुत जेल में रातें॥
कभी जिन्दगी के ऐसे भी खुशकिस्मत दिन आते।
घने अन्धेर बुरे दिनों के बादल भी कट जाते॥
[सभी आकर उसे ताज्जुब से देखते हैं।]

व्यक्ति एक : जल्दी छूट जाओगे ?

बचनराम : हाँ।

व्यक्ति दो : मुझको पता था, पहले से ही पता था।

व्यक्ति एक : क्या ?

व्यक्ति दो : डाकू हो तो भला जेल में रहेगा ?
किसकी हिम्मत है उसे कैद में रख ले ?

बचनराम : (बहरतवील)
कर यकीं आप लेवें मेरी बात का,
मैं न डाकू कभी जिन्दगी में हुआ।
गाँव का एक सीधा सा मजदूर हूँ,
दूसरे का कभी माल है ना छुआ॥

व्यक्ति चार : (दौड़)
बात सच सच कह दूं मैं।
काटता होगा जेब॥

बचनराम : (दौड़ शेषांश)
बात सच बोल न पाऊँ।
हुक्म हुआ चुप रहने का मैं उसको यहाँ निभाऊँ॥

दारोगा : (सहसा आ जाता है)
(बहरतवील)
कौन बक बक यहाँ कर रहा जान ले,
आ गया उसका परवाना मरने का है।
खाल जाएगी सुन लो उतारी अभी,
मेरा हंटर न अब सब्र करने का है।

वक्त बैरक में जाने का है हो गया,
चल पड़ो कर जुबाँ बन्द सीधे उधर।
मुझको कहना दुबारा न तुमको पड़े,
बात हंटर से होगी अगर की उजर॥
[लोग धीरे-धीरे जाते हैं।]

रंगा : (दोहा)
लगा काटने जेल में बचनराम दिन रोय।
उधर गाँव में देखिये कैसी लीला होय॥
(दौड़)
भुखमरी बढ़ती जाती।
फटी धरती की छाती॥
बूँद पानी ना बरसा।
सूखे सरवर कुएँ गाँव दाने-दाने को तरसा॥
[लोग बेहाल आते हैं।]

सभी : (बंगला लोकगीत)
अल्ला मेघ दे पानी दे···

व्यक्ति एक : (दोहा)
रेत-रेत सब रह गया सूखे कूप तड़ाग।
खोल पिटारी आग की रेंग रहे हैं नाग॥

व्यक्ति दो : (दोहा)
हल पिघला है खेत में उगते हैं अंगार।
छाती पर है गिद्ध सा दुर्दिन हुआ सवार॥

व्यक्ति तीन : (दोहा)
पानी पानी खोजते छीज गए हैं हाड़।
गंगा लाने को यहाँ खोदे कौन पहाड़॥

व्यक्ति चार : (दोहा)
क्या मानुष क्या जानवर बूँद बची न नैन।
जमे दहकती शिला से माथे पर दिन रैन॥

व्यक्ति एक : (दोहा)
छपा रुग्ण आकाश पर स्याह पेड़ कंकाल।
रक्त शिराएँ सूखकर जैसे लिखा अकाल ।।

सभी : (बंगला लोकगीत)
अल्ला मेघ दे पानी दे···

[हाकिम आता है। सब चुप होते हैं।]

हाकिम : मैंने सुना बहुत मुसीबत में पड़ गए आप।
इसीलिए मुझे भी लगा,
मुझे यहाँ आना ही चाहिए।

व्यक्ति तीन : सूखा और अकाल पड़े,
तो महामारी आती ही है !

हाकिम : चिन्तित हैं हम लोग,
एक बड़ा तालाब यहाँ बनवा दें।

व्यक्ति दो : तालाब भले ही बने सिर्फ कागज पर।
बंगला साहब का इस चक्कर में,
बड़ा बनेगा, बीघे भर जमीन में, पक्का।

व्यक्ति चार : वहाँ मजूरी तो देंगे हुजूर ?

हाकिम : मिलेगी-मिलेगी (**बात समझकर**) क्या कहा ?

व्यक्ति तीन : कहेंगे क्या सरकार हम तो गूंगे हैं।
देख लीजिये।

हाकिम : (**बहरतवील**)
राज तुम सबके दुख से दुखी है बहुत,
चाहता है मदद कुछ तुम्हारी करे।
गाँव छोड़ो चलो काम देंगे तुम्हें,
एक उम्दा जहाँ पेट सबका भरे।

व्यक्ति एक : (**बहरतवील**)
यों पे रोए हँसे हैं जिए और मरे,
गाँव मत बाप-दादों का छुड़वाइए।
दर्द हो गर कलेजे में सरकार की,
खेत में हमको पानी पहुँचवाइए ।।

हाकिम : (**बहरतवील**)
बात समझोगे तुम कायदे की नहीं,
छोड़ इस गाँव को गर चलो साथ में।
कारखाना यहाँ एक लगवाएँगे,
तुम वहाँ पाओगे धन नकद हाथ में ।।
गर मेरी बात से तुम न राजी हुए,
शौक से दिन गुजारो सबर के यहीं।
माँग खाने की तुमको है आदत पड़ी,
कोई अच्छी तुम्हें बात भाए नहीं ।।
मैंने सोचा था तुम सब मुसीबत में हो,
काम पाकर करोगे मजे में गुजर।
मैं चला, दे खुदा भी मदद उसको क्या,
जिसको अपनी भलाई से होती उजर ।।

सभी : (**दोहा**)
दुविधा में हैं हम सभी पड़ी मुसीबत आय।
क्या करिए कित जाएँ, समझ नहीं कुछ पाय ।।

स्त्री : (**दोहा**)
बात न इसकी तुम सुनो कभी न छोड़ो गाँव।
खसलत इसकी जानती खेल रहा ये दाँव ।।

हाकिम : (**दोहा**)
लानत है मैं आ गया न शुके तुम लोग।
अब न दुबारा से कभी पाओगे संयोग ।।

(**बहरतवील**)
सच कहूँ आज तुम लोग पिछड़े हुए,
बात कुछ बेहतरी की न भाए तुम्हें।
जो भलाई करे वो बुराई सहे,
दीनता गाँव की ही लुभाए तुम्हें ।।

स्त्री : (बहरतवील)
झेल हम तेरी नेकी सकेंगे नहीं,
जा यहाँ से रहम कर मेरे हाल पर।
जानते खूब हैं तेरी आदत को हम,
तू कहीं और भर जाके अपना उदर ।।
एक पुल जो बनाया था तूने यहाँ,
और डिस्पेन्सरी भी गई पेट में।
जेल से मेरे पति को करेगा रिहा,
क्या हुआ तेरा वादा बता कुछ हमें ।।
(दौड़)
हाज़मा ऐसा पाया।
हज़्म जो सब भी खाया ।।
चरे बिजली के खंभे।
कुएँ ताल नहरें इमारतें लीं डकार जै अंबे ।।

हाकिम : (स्वगत)
(दोहा)
औरत भाई है मुझे पर स्वभाव की तेज।
लेकिन मेरी चाल भी है हैरत अंगेज ।।
(बहरतवील) (स्त्री से)
बात आई मुझे याद सुन लो जरा,
भूल जाऊँ न झंझट में उसको कहीं।
जेल से तेरे खाविन्द को छोड़ना,
आके कागज पे कर दस्तखत तू वहीं ।।

स्त्री : (बहरतवील)
साँस छूटी हुई मिल गयी है मुझे,
जो सुनाई अभी आपने है खबर।
बदजबानी को अब मेरी कीजे क्षमा,
आपके आसरे मैं करूँगी सबर ।।

सभी : (बंगला लोकगीत)

अल्ला मेघ दे पानी दे···

रंगा : (दोहा)
हाकिम मनवाकर चला आखिर अपनी बात।
बचो भेड़िया मिलेगा वहाँ लगाए घात ।।
(चौबोला)
खड़ा लगाए घात, जेल का हाल सुनो अब आगे।
हाकिम ने वापस आकर गुम कर दी उसकी फाइल।
जिससे बचनराम जीवन भर जले जेल में तिल-तिल ।।
[जेल में कैदी]

व्यक्ति एक : फिर सोच रहा बचनराम।

व्यक्ति दो : अभी नया है सोचेगा ही। कुछ दिन और बीत जाने दो, हर लोगों की तरह इसकी भी आदत सोचने वा गुमसुम रहने की बदल जायगी।

व्यक्ति तीन : बदलकर ही हमने मार लिया कौन सा तीर भला ?

व्यक्ति चार : इसकी माँ का लकड़बग्घा साला।

व्यक्ति दो : किसको गाली दिया ?

व्यक्ति चार : तुम सब··· (रुक जाता है।)
नहीं आपने कोई गाली दी है, समझो।

व्यक्ति एक : हाकिम भी हमको ही गाली देता है।
हम भी गाली देते हैं तो अपने को ही।

व्यक्ति दो : और वह भी माँ की गाली !

व्यक्ति तीन : (व्यक्ति चार से)
तुम्हारी माँ जिन्दा है ?

व्यक्ति चार : नहीं।
माँ तो कब की मर गयी।
मगर माँ की गाली दो
तो माँ जिन्दा-जिन्दा-सी लगने लगती है—
इसकी माँ की ···।

दारोगा : (आता है।)

(दौड़)
दिया था किसने गाली।
जुबाँ जाए खिचवाली॥
बता देता हूँ सबको।
मक्कारी गर देखी मैंने कठिन सज़ा दूं सबको॥

बचनराम : (दोहा)
अर्जी दारोगा जेल के बात सुनो चित लाय।
राजा जी से तुम जरा मुझको दो मिलवाय।
(दौड़)
बहुत दिन कैद बिताई।
हमें दो मुक्त कराई॥
समर्पण का नाटक था।
याद दिला दें हाकिम को मुझसे उसका जो वादा॥

दारोगा : (दोहा)
माँग रिहाई तू रहा कैसे हुई मजाल।
उमर कैद तेरी कटा अभी दूसरा साल॥

बचनराम : (दोहा)
उमर कैद की बात क्यों करते हैं सरकार।
नहीं हमारे केस में उम्र कैद दरकार॥
(चौबोला)
उमर कैद दरकार नहीं मैंने जो किया समर्पण।
उसकी शर्तों में था रिहा करेंगे मुझको फौरन॥
जाने हैं सरकार यहाँ मेरे आने का कारण।
मिलवाओ राजा से मेरा दुखड़ा करें निवारण॥

दारोगा : (दोहा)
फाइल तेरे केस की कहीं गयी है खोए।
सभी महकमों में यहाँ ऐसा ही है होय॥
(बहरतवील)
गुम सड़क बाँध नलकूप कितने हुए,
ये है सरकार इसमें सभी कुछ है गुम।

अपनी फाइल की तुम क्या शिकायत करो,
इस हुकूमत का जलवा न समझोगे तुम॥
बात राजा से मिलने की मत कर यहाँ,
अपनी औकात को भूलता क्यों यहाँ॥
हैं सवालात हल उनको करने बड़े,
बात तेरी सुनें ऐसी फुरसत कहाँ॥

बचनराम : (बहरतवील)
वो बड़े लोग बातें हैं उनकी बड़ी,
हम बहुत नीच हैं फिर भी इन्सान हैं।
तुम दिला दो अगर वक्त थोड़ा मुझे,
मैं तुम्हारा भी मानूँगा एहसान है॥

दारोगा : (बहरतवील)
आज खानी अशोका में दावत उन्हें,
कल भुतनियाँ के साधू के दर्शन करें।
सेमिनारों में शिरकत है करनी उन्हें,
नींव का फिर सिनेमा के पत्थर धरें॥
रात-दिन हैं वो मसरूफ रहते बड़े,
अपनी सरकार को जानता तू नहीं।
कर बसर जेल में भागना तू नहीं,
वरना मारूँगा गोली तुझे मैं यहीं॥

बचनराम : (दोहा)
खाओ कुछ मुझ पर रहम मैं दुखिया इंसान।
मैं असली डाकू नहीं आफत में है जान॥
(चौबोला)
आफत में है जान हुई कुछ गलती इसमें भारी।
मुझे रिहाई देंगे यह था वचन मिला सरकारी।
आत्म समर्पण के नाटक की ऐसी तेग दुधारी।
चंद टकों के लिए जिन्दगी दूभर हुई हमारी॥

दारोगा : (दोहा)

इन्तदाए इश्क है अभी रहा क्या रोय।
आगे-आगे देखना हाल बुरा क्या होय॥

(बहरतवील)

रोने-धोने का याँ कुछ नहीं काम है,
खाल में भुस भरूँगा न गुस्सा दिखा।
ढील होने न पाए किसी काम में,
कूट पत्थर करम में यही है लिखा॥
भूल जा अपना घर-बार मुँह पर न ला,
नाम महबूब का या किसी और का।
जेल है तेरा घर तेरी चक्की प्रिया,
रह गया है न अब तू किसी ठौर का॥

कोरस : (गजल)

हिज्र की शब नाल-ए-दिल यूं सदा देने लगे,
सुनने वाले रात कटने की दुआ देने लगे।
बागवाँ ने आग दी जब आशियाने को मेरे,
जिनमें तकिया था वही पत्ते हवा देने लगे।

(सभी जाते हैं।)

रंगा : (दोहा)

उधर सुन्दरी को नहीं बचनराम बिन चैन।
काटे थे दो-दो बरस भर-भर आँसू नैन॥

[स्त्री आती है।]

कोरस : (नेपथ्य से चैती)

हथवा लगत कुम्हलाय गयो रामा जूही के फुलवा।
बेला भी तुलड़ल्यों, चमेली भी तुड़ल्यों,
तुड़त-तुड़त कुम्हलाय गयो रामा जूही के फुलवा।

रंगा : (दोहा)

हाकिम से बिनती करन चली शहर की ओर।
पति की खातिर आ गई संकट में घनघोर॥

स्त्री : (दोहा)

सुन लो लोगो आ गई मैं हाकिम के पास।
पता बता दो आपको राम-राम अरदास॥

(चौबोला)

राम-राम अरदास, आ रही पति को रिहा कराने।
काँप रहा है दिल आई हूँ मैं विदेस बेगाने॥
हाकिम रहा लिखाय कौन से दस्तावेज न जाने।
हाकिम की सरकारी जाने विधि विधान अनजाने॥

[हाकिम आता है, मुस्कुराता है।]

हाकिम : (दोहा)

(जनान्तिक)

दुखिया हो सुन्दरी सुन्दरी कौन तरस ना खाय।
पंख बिना पंछी गिरे आप जाल में आय॥

(स्त्री से)

रोती क्यों है सुन्दरी झुका चरण पर शीश।
बड़े-बड़े तेरे लिए हों कुर्बान रईस॥
तुम शायद हो सुन्दरी बचनराम की नार।
इस गुलाब तन को दिये दुख कितने करतार॥

(बहरतवील)

है छलकती हुई मय सी तू गुलबदन,
बोल तकलीफ क्या हो गयी है तुझे।
बोल फौरन मुसीबत है क्या आ पड़ी,
देखकर तेरा दुख रोना आए मुझे॥

स्त्री : (बहरतवील)

आप खाविन्द को मेरे कर दें रिहा,
उसको पूरा करें जो दिया था वचन।
गर करें आप उपकार हम जूतियाँ,
आपके नेक चरणों की जाएँगे बन॥

हाकिम : (बहरतवील)
देख आँसू कलेजा मेरा हिल गया,
तेरा दुख दूर करने को बेचैन हूँ।
हुक्म दे सुन्दरी हुक्म दे सुन्दरी,
हाथ में आया मौका मैं जाने न दूँ॥

स्त्री : (दोहा)
लगती हैं ये रहम की बातें तेग दुधार।
शरणागत को अभय दो ऐ मेरे सरकार॥

हाकिम : (दोहा)
बात मान जा गर मेरी होगी मालामाल।
वरना क्या हो सोच ले बचनराम का हाल॥

स्त्री : (दोहा)
मेड़ खाए जो खेत को होगा फिर क्या हाल।
वहाँ आशियाँ क्या बने जो जलती हो डाल॥

(दौड़)
सभी हमको ही लूटें।
आपसे क्यों कर छूटें॥
खड़े हर तरफ कसाई।
उधर दहकती आग इधर आओ तो गहरी खाई॥

हाकिम : (बहरतवील)
बात गर तू मेरी मान जाए अभी,
तेरे कदमों में दुनिया की दौलत धरूँ।
कट सदा के लिए जाय गुरबत तेरी,
हीरे-मोती से मैं तेरा आँचल भरूँ॥

स्त्री : (बहरतवील)
चाँद-तारों से मेरी भरी माँग है,
रूखी रोटी से ज्यादा न पकवान है।
तेरे जेवर तेरा धन मुबारक तुझे,
मेरा सत मेरे जीवन का भगवान है॥

हाकिम : (बहरतवील)
बस किसी का नहीं मेरे आगे चले,
करता हासिल हूँ जो मन को भाता मुझे।
बात मेरी न मानी तो तू जान ले,
दिन बुरे देखने होंगे खासे तुझे॥

स्त्री : (दोहा)
धमकी क्या देता मुझे, मैं गरीब सन्नार।
मार वक्त की झेलती तू भी कर ले वार॥

(चौबोला)
तू भी कर ले वार, याद रख जब गरीब उठता है।
तोप तमंचों बन्दूकों से वो न कभी झुकता है॥
भूख मफिलिसी जो जीवन भर लड़ता झंझा है।
हो जाता खूँखार चले तो आ जाता तूफाँ है॥

कोरस : (नग्मा)
आओ रोशन कर लें मशालें जुल्म की गहरी रातों में।
बात अधूरी रह ना जाए छोटी-छोटी बातों में।
आँगन-आँगन गलियाँ-गलियाँ गुम-सुम हैं सब दीवारें।
जिस्म का ईंधन लाके जलाओ बहती गर्म हवाओं में।
उनका सब कुछ दाँव लगा है लड़ने वालो आ जाओ।
अपनी जाएँ तो बस जाएँ जंजीरें हैं पावों में॥

[लोग जैसे हाकिम को घेर लेते हैं। हाकिम घबराकर बात पलटता है।]

रंगा : (दोहा)
सतवंती के सामने गया फरेबी हार।
झुका न पाया जुल्म से वह गरीब की नार॥

हाकिम : (दोहा)
मुझसे मत हर्गिज डरो हुआ इम्तहाँ आज।
तू सतवन्ती नार है होगा तेर काजा॥

(चौबोला)

होगा तेरा काज, सुनो अब मैं तुमको समझाता हूँ।
काम सफल हो जाय युक्ति ऐसी तुमको बतलाता हूँ।
राजा जी हैं बड़े रहमदिल मैं उनसे मिलवाता हूँ।
करो वहाँ फरियाद तुम्हारी अर्जी मैं पहुँचाता हूँ॥

स्त्री : **(दोहा)**

जहाँ कहोगे जाऊँगी दिल मेरा बेजार।
पति के कारण मिलूँगी उनसे भी सरकार॥

(दौड़)

मुझे मिलवाओ फौरन।
पड़ूँ मैं उनके चरनन॥
छुड़ाऊँ अपना शौहर।
इस नेकी के बदले तुमको मिलें दुआएँ जी भर॥

[दोनों चल पड़ते हैं।]

रंगा : **(दोहा)**

चला सती को संग लेकर हाकिम हरसाय।
नेकी का नाटक रचे मन में हँसता जाय॥

(मर्सियाखानी)

मासूम को गुमराह किया खूब सुनो जी।
हाकिम का हाथ घी में गया डूब सुनो जी॥
सत्ता की नाव ठेलते हैं जो भी रेत में।
वो बो रहे जहर यहाँ इंसाँ के खेत में॥
जनता के नाम लेके जो आते हैं पाँच साल।
पहले के जैसे काटते लगते हैं वो भी माल॥
पहले हजार साल में जो भी हुए थे खेल।
वे सब लगा दिए गए हैं आज फिर से सेल॥
तो आइये देखें किया हाकिम ने क्या कमाल।
मासूम सी नारी की था इज्जत में डाका काल॥

[राजा आता है।]

व्यक्ति एक : राजा जी आ तो गए।
व्यक्ति दो : मगर व्यस्त हैं, बहुत व्यस्त हैं।
व्यक्ति तीन : मुझे पता है। राजा जी हैं आखिर।
भारी भारी दस्तावेजों पर चढ़-चढ़कर
जाने किन-किन मसलों पर करनी होती है
टिप्पणी…
व्यक्ति चार : या बहस।
व्यक्ति एक : ऐसे में कौन सुनेगा ? आज फिर उसी तरह
लौटना होगा।
व्यक्ति दो : जैसे कल लौटे थे या परसों, या उससे पहले—
[महाराजा बहुत आराम से कान खुजाता है।]
व्यक्ति तीन : मुझे तो सिर्फ एक दस्तखत लेना था यह साबित करने के
लिए कि मैं जिन्दा हूँ। पेन्शन लेनी होती है तो सुबूत तो
देना ही होगा अपने जिन्दा होने का।
व्यक्ति चार : कैसा अजीब लगता है।
सिर्फ पेन्शन लेने के लिए।
अपने को जिन्दा साबित करना…
व्यक्ति तीन : या जिन्दा साबित करने के लिए दस्तखत का करना
इन्तजार कितना अजीब लगता है !
[हाकिम स्त्री के साथ आता है।]
व्यक्ति एक : लो फिर आज हो गयी छुट्टी।
हाकिम आ पहुँचा है।
व्यक्ति दो : कोई औरत लाया है राजा से मिलवाने।
व्यक्ति तीन : काम बड़ा होगा वरना वह थैली लाता।
हाकिम : बस अब जाएँ आप लोग, सरकार व्यस्त हैं।
व्यक्ति चार : हमको दर्शन करने थे…।
हाकिम : हर रोज सवेरे दर्शन देते हैं सरकार।
सदियों से दर्शन देते आए हैं।
कभी बाबर दर्शन देता था बुर्जी पर चढ़कर।

राजा पुरुरवा एक झरोखे से दर्शन देते थे।
जिमींदार शमशेर सिंह परदे के पीछे से,
अपनी टाँग निकाल कर दर्शन देते थे।
हर सुबह आपको भी दर्शन देते हैं सरकार।

व्यक्ति दो : पर हम तो हर रोज यहाँ आते हैं ?

हाकिम : आते रहिए।

सभी : (जाते हुए)
दर्शन देती है सरकार सदियों से,
ऐसी ही हम सबको दर्शन देती है—
औरत या थैली के बिना
इसी तरह दर्शन देती है सरकार,
सदियों से इसी तरह दर्शन देती है सरकार—
[सभी जाते हैं। राजा कान खोदता रहता है। औरत चुप खड़ी रहती है। हाकिम चौकन्ना होकर राजा के पास जाता है।]

रंगा : (दोहा)
कौन कहे हो जायगा कब क्या किसके साथ।
इसी तरह हैं घेरते ये साजिश के हाथ॥

कोरस : (दादरा)
जहर चढ़ि जाय नेता के काटे॥
कुकुर ने काटा, संपोलवा ने काटा,
कुछ ना भया बिसतुइया ने चाटा।
जहर चढ़ि जाय नेता के काटे॥
बिच्छू ने काटा, बिसखोपड़ा ने काटा,
कुछ ना भया जब अकडमी ने काटा।
जहर चढ़ि जाय लीडर के काटे॥
नाटक ने काटा, नौटंकी ने काटा,
कुछ ना भया पत्रकारों ने काटा।
जहर चढ़ि जाय नेता के काटे॥

हाकिम : (राजा से)
हुजूर, एक बहुत जरूरी बात कहनी है।

राजा : जरूरी ? पब्लिक या प्राइवेट ?

हाकिम : बिल्कुल प्राइवेट बात है हुजूर, बिल्कुल प्राइवेट।

राजा : (फौरन कान बन्द करके) अबे, तो उधर जा, बाथरूम में।

हाकिम : हुजूर कान में, कान में···।

राजा : (खड़ा हो जाता है) अबे, क्या करता है बदतमीज !

हाकिम : हुजूर, सुन तो लें, वैसी बात नहीं है।
(दोहा)
मैं लाया हूँ नार इक, उमर अठारह साल।
खुश हुजूर से होयगी है गुदड़ी की लाल॥
(चौबोला)
है गुदड़ी की लाल, आपकी खिदमत में ले आया।
उसकी हालत देख-देखकर तरस सभी ने खाया॥
होगा याद आपको डाकू बचनसिंह मैं लाया।
ये उसकी बीवी है जिसको हमने जेल पठाया॥

राजा : (दोहा)
मेरी सुविधा का सदा रखते तुम हो ख्याल।
अपनी इन खिदमात से होगे मालामाल॥

हाकिम : (दोहा)
(स्त्री से)
आगे बड़कर थाम ले राजा जी के पाँव।
ये गर खुश हो जायेंगे पार लगेगी नाव॥

स्त्री : (हाकिम से)
(दोहा)
मैं परजा हूँ आपकी कहूँ चरन सिर नाय।
मुझ दुखियारी नार की अरजी सुन ली जाय॥

राजा : (बहरतवील)
देश के हित करी मैंने कुरबानियाँ,
त्याग मैंने किया जेल में भी रहा।

मुझको उसका सिला चाहिए कुछ नहीं,
एक तेरे करम के लिए सब सहा ।।
चाहिए तुझको क्या बोल ऐ गुलबदन,
तुझपे कर दूँ निछावर दिलो-जाँ को मैं ।
हुस्न की मय पिला दे मुझे साकिया,
अपने सीने लगा लूँ मेहरबाँ को मैं ।।

स्त्री : (दोहा)
घेरे पापी लोग हैं मची हुई है लूट ।
पिंजरे का पंछी कहाँ जाय व्याध से छूट ।।
(चौबोला)
जाय व्याध से छूट, धरम कैसे बच पाए मेरा ।
इज्जत से मर जाऊँ या फिर अंत करूँ मैं तेरा ।।
धरम न मेरा लो मंत्री जी मैं विनती करती हूँ ।
मेरे पति को रिहा करो मैं चरण शीश धरती हूँ ।।

राजा : (दोहा)
और न अब तू आजमा धीरज मेरा आज ।
मेरे काटे का नहीं होता कहीं इलाज ।।
(बहरतवील)
मैं जो चाहूँ समन्दर को भी सोख लूँ,
मैं झुका लूँ हिमालय को जबरन यहाँ ।
मेरी मुट्ठी में लोगों की तकदीर है,
याँ बिना ताज का हूँ मैं शाहे जहाँ ।।
मेरी बातों से इनकार जिसने किया,
वो बहर मिट गया मिल गया धूल में ।
देख लूँगा मुझे रोकता कौन है,
अपनी मर्जी करूँ पा ही लूँगा तुम्हें ।।

स्त्री : (बहरतवील)
देख ली असली सूरत यहाँ आपकी,
इतनी सस्ती गरीबों की इज्जत नहीं ।

हाथ रखना अलग दीन सतनार की,
आह से भस्म हो जायगा तू यहीं ।।

राजा : (बहरतवील)
नाजनी इस तरह क्रोध तू ना दिला,
चाहती जो बता दूँगा फौरन तुझे ।
तेरा खाविन्द सूली पे दूँगा चढ़ा,
तू करेगी जो मायूस आकर मुझे ।।

स्त्री : (दोहा)
जिनको आई जेल से रिहा कराने आज ।
जाय जान उनकी जिऊँ मैं कैसे महाराज ।।

राजा : (दौड़)
बाँह में मेरी आओ ।
रिहा पति को करवाओ ।।
साफ है वचन हमारा ।
या तुम मेरी बनो नहीं तो पति जाएगा मारा ।।

स्त्री : (दोहा)
पति खोऊँ या आबरू दोनों है धिक्कार ।
घातक कम किसको कहें बर्छी या तलवार ।।
(राजा आगे बढ़ता है ।)
आगे बढ़ना तू नहीं भारी अनरथ होय ।
मुझको हाथ लगा नहीं नीति न्याय सब खोय ।।
(कटार निकाल लेती है ।)
तू डरता बदकार क्यों मारूँगी ना तोय ।
ये कटार इस विपद से मुक्ति दिलाए मोए ।।
[कटार से आत्महत्या करना चाहती है पर राजा कटार छीन लेता है ।]

महाराजा : (बहरतवील)
कैद तू मेरे पिंजरे में ऐसी हुई,
पंख भी खोल पाना असम्भव यहाँ ।
आ गया मेरे पंजे में इक बार जो,
भाग कर देखता हूँ वो जाए कहाँ ।।
(उसे पकड़ लेता है । वह चीखती है ।)

कोरस : सुतूनेदार में रखते चलो सरों के चराग।
जहाँ तलक ये सितप की सियह रात चले।

[अस्त-व्यस्त स्त्री उठती है।]

स्त्री : (दोहा)
अपना सत दे मैं चली मरने चिता सजाय।
ऐसे जालिम राज को लगे सती की हाय॥

कोरस : (साड़)
हो रानी डेओढ़ी में दियना जराऊँ।

[स्त्री जल कर मरती है।]

रंगा : वहाँ सती ने जान दे इज्जत लई बचाय।
आगे होता क्या यहाँ देखो ध्यान लगाय॥
(चौबोला)
देखो ध्यान लगाय, जेल की अब मैं कथा सुनाऊँ।
बन्दी बचनराम तक अपने में श्रोता ले जाऊँ॥
बीवी हुई शहीद सुना जब रोम-रोम घर्राया।
करगवाह आकाश धरा बदले की कसम उठाया॥

[जेल का परिवेश। कैदी और क्षुब्ध बचनराम]

बचनराम : मैं बदला लूँगा,
सुन रहे हो तुम लोग ?
मैं बदला लूँगा !

व्यक्ति एक : उस दिन भी था ऐसा ही गुस्सा इसका।

व्यक्ति दो : याद है।

व्यक्ति तीन : अब तो सिर्फ आज है, हाथ सेंकते रहो।

बचनराम : कसम खाता हूँ,
मैं बदला लूँगा।
बहुत भयानक बदला लूँगा।

व्यक्ति चार : बीवी छिनने पर बदला लेगा,
रोटी छिनने पर नहीं।

बचनराम : अब हर सवाल पर बदला लूँगा।
बहुत भयानक बदला लूँगा।
सूखे दरिया की छाती पर,
सड़क पर गिरे दरख्तों का बदला।

धरती की तरह चटख गए चेहरों,
और सूरज की छाती से उबल,
हम सबकी तकदीरों पर फैल गए अन्धेरे का बदला।
हर सवाल का बदला लूँगा।
क्योंकि औरत का नहीं,
एक समूचे दिन का खून हो गया है आज,
मैं बदला लूँगा, बहुत भयानक बदला।

व्यक्ति तीन : ठहरो !
एक बहुत बड़ा डाकू आया है इस जेल में।

बचनराम : डाकू कह लो या पिशाच।
मैं बदला लूँगा।

व्यक्ति चार : सचमुच का डाकू आया है।
आठ गाँवों को लूट, तीन सौ कत्ल करने के बाद।
हथियार
बड़े भारी जलसे में राजा को देकर आया है।

व्यक्ति एक : तो क्या अब राजा लूटेगा या कत्ल करेगा !

कोरस : (नेपथ्य से)
सब डाकू सरदार हो, बोलो बम भोले।

[डाकू आता है। पीछे-पीछे हाथ जोड़े हुए हाकिम।]

हाकिम : (दोहा)
आत्म-समर्पण कर चुके हैं चम्बल के शेर।
करें कृतारथ जेल को मिले यहाँ सुख ढेर॥

डाकू सरदार : (बहरतवील)
बात तू जेल की मुझसे मत बोल रे,
बीवी बच्चे न होवें परेशाँ मेरे।
और मेरे मुकदमें की फाइल मुझे,
पहले दिखलाएँ तब केस दायर करें॥
राजबन्दी के आदर का हकदार हूँ,
राजसी चाहिए मुझको सुविधा सभी॥
बोल दो अपनी सरकार से जाके तुम,
एक फ्रिज और टी० वी० लगाए अभी॥

कोरस : (नेपथ्य से)
हम डाकू सरदार हो बोलो बम भोले।
[डाकू और हाकिम जाते हैं।]

व्यक्ति एक : (बचनराम से)
क्या हुआ बहुत चुप हो गए ?

व्यक्ति दो : एक दम गुम-सुम,
जैसे हवा थम गई हो उमस भरी।

व्यक्ति तीन : आँधी आने से पहले ऐसा होता है अक्सर।
उमस भर जाती है, थम जाती है हवा।

व्यक्ति चार : क्या उसकी फिर याद आ गई ?

कोरस : (नेपथ्य से)
(माड़ केवल एक पंक्ति)
हे राजा गंगा मैं चुनरी चढ़ाऊँ।
हो राजा ड्योढ़ी पे दियना जराऊँ॥
[बचनराम उत्तेजित होता है।]

बचनराम : मैं बदला लूँगा, बहुत भयानक बदला।
(दोहा)
क्या पड़ता है फर्क अब जीना मरना एक।
नहीं सकेंगे जेल के मुझे सींखचे छेक॥
[बचनराम भाग जाता है।]

कोरस : (नग्मा)
क्या हिन्द का जिन्दा काँप रहा है गूंज रही हैं तकबीरें।
उकताए हैं शायद कुछ कैदी और तोड़ रहे हैं जंजीरें॥
[हाकिम घबराया आता है।]

हाकिम : क्या हुआ ? क्या हो रहा है ?

व्यक्ति एक : वो भाग गया—जेल से भाग निकला।

हाकिम : (दौड़ पड़ता है।)
पकड़ो। दौड़ो। घंटी बजाओ। (वापस आकर) मगर भागा कौन है ?

व्यक्ति चार : बचनराम। जेल तोड़ कर भाग गया।

हाकिम : (फिर हड़बड़ाकर भागता है।)
जल्दी करो, पकड़ो। (वापस आता है) मगर वो

भागा कैसे ?

व्यक्ति एक : ऐं, भागा कैसे ? (दूसरों से) कैसे भागा जी ?

सभी : (एक साथ भागते हुए)
ऐसे भागा !
[वे भागते चले जाते हैं। तब सहसा हाकिम को होश आता है।]

हाकिम : पकड़ो-पकड़ो, कैदी भाग गए, पकड़ो।

कोरस : (नग्मा)
क्या हिन्द का जिन्दा काँप रहा है गूँज रही हैं तकबीरें।
उकताए हैं शायद कुछ कैदी और तोड़ रहे हैं जंजीरें॥
क्या उनको खबर थी जेरो जबर
रखते थे जो रूहे मिल्लत को।
उबलेंगे जमीं से मारे सियह बरसेंगी फलक से शमशीरें॥
सम्भलो कि वो जिन्दा गूँज उठा,
झपटो कि यो कैदी छूट गए।
उट्ठो कि वो बैठी दीवारें दौड़ो कि वो टूटी जंजीरें॥

रंगा : पहुँचा डाकू बन जहाँ था नेता का धाम,
तोड़ जेल आया निकल बचनसिंह रख नाम।
जो बसर नेक दिल और मासीम था,
उसको जालिम ने डाकू बनाया यहाँ।
देखिए आ गया काल से तेग ले,
सामने ठीक नेता खड़ा था जहाँ॥
(दौड़)
तेग जब उसने तानी।
मरी नेता की नानी॥
लगा काँपने थर-थर।
मुश्किल से ही चन्द लफज था वो बोला हकलाकर॥

महाराजा : (दोहा)
तु-तु-तु-तु-तुम क-क-कौन हो ये त-त-त-त-तलवार।
ड-ड-ड-ड-डर लगता मुझे उधर करो य-य-यार॥

बचनराम : नाम जान क्या करेगा बचनराम था नाम।
बचनसिंह डाकू हुआ, बदला लेना काम॥

(बहरतवील)
याद कर एक दिन था बुलाया मुझे,
चन्द रुपयों पे डाकू बनाया मुझे।
कर समर्पण का नकली तमाशा यहीं,
जेल भेजा मुझे सुध न आई तुझे॥

महाराजा : (दोहा)
पहचाना मैंने तुम्हें तुम हो बेहद नेक।
कष्ट कहो कैसे किया, तेग दुधारा फेंक॥

बचनराम : (बहरतवील)
याद है इस जगह मेरी बीवी कभी,
भीख मेरी रिहाई की थी माँगती।
लाज तुझसे बचाने को जाँ अपनी दी,
तेग उस खूं का बदला लिया चाहती॥

(महाराजा डर जाता है।)

देख तलवार ये डर के घिग्घी बँधी,
मारता डींग था किसलिए इस तरह।
मेरी माशूक की तूने ली जान थी,
मिस्ल बकरे के तुझको करूँगा जिबह॥

[महाराजा को मारता है। हाकिम आता है लेकिन वह भी डर जाता है।]

कोरस : जो आज डाकू बना रहे हैं,
उन्हीं के हाथों बिका जमाना॥
चुगेंगे कौवे यहाँ पे मोती,
मिलेगा हंसों को दुमका दाना।
हमारी छाती को फोड़ जिनके,
उगे हैं नोटों के पेड़ ऊँचे।
उन्हीं के नीचे पका न पाए,
दो ईंट रखकर हम अपना खाना।
जला कलेजा निचोड़ बाजू,
उगाई तारीख हमने लेकिन।
जो खून खंजर से उनके टपका,
उसी में डूबा है आशियाना॥

□□□